संस्थापक :
योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

वर्ष : 42; अंक : 7
अक्टूबर 2009

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

अदीक्षिताः ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः।
देवि दीक्षा विहीनस्य न सिद्धिर्नच सद्गति।।

अर्थात् बिना समर्थ गुरु से दीक्षा प्राप्त किए जो लोग जप, यज्ञ, पूजा आदि क्रियायें करते हैं उन्हें उन काम्य कर्मों में न तो सफलता मिलती है और न उनकी सद्गति होती है।

◆ ◆ ◆

गुरुं प्रकाशयेद् धीमान् मंत्रं नैव प्रकाशयेत्।
अप्रकाश प्रकाशाभ्यां क्षीयते सम्पदायुषः।।

अर्थात् गुरु प्रदत्त मंत्र को गुप्त रखने से ही मंत्र शक्ति सम्पन्न बनता है। प्रकाशित कर देने पर साधक श्रीहीन होकर अकाल काल कवलित हो जाता है।

◆ ◆ ◆

स्वाध्यायद्योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते।।

जाप करो फिर ध्यानाभ्यास करो। मंत्र जाप एवं ध्यान योग के बारम्बार अभ्यास से परमात्मा प्रकट होते हैं–ईष्ट देव के दर्शन होते हैं।

◆ ◆ ◆

मच्चिता मद्गत प्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्य तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

अर्थात्, मेरे भक्त जिनके मन और प्राण निरन्तर मुझ में ही अर्पित है, वे परस्पर एक दूसरे को मेरे दिव्य प्रभाव एवं कर्म–लीला को सुनाते हुए अत्यधिक प्रसन्न होते हैं और फिर मुझ वासुदेव में ही नित्य रमण करते हैं।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणांनाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 42 अंक : 7

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य–
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसारहेतु रपि यः पुनरन्तकालस्तं
शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि।

जो इस सम्पूर्ण चराचर जगत के कर्ता और इसे अपने किए हुए कार्मों के अनुसार सुख–दुःख देने वाले हैं, जो संसार की उत्पत्ति हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देने वाले उन्हीं भगवान शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

अक्टूबर, 2009

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 6
3. महान सिद्धयोगी अनन्त 'श्री चन्द्रमोहन जी महाराज' –आचार्य पूर्णचन्द्र पन्त 9
4. लंकापति रावण की हवेली – आचार्य गया प्रसाद भारद्वाज 14
5. सद्गुरु कृपालीला – जगदीश राए बंसल 19
6. नेपालधाम के दिव्य दर्शन – मोती राम गर्ग 23
7. सच्चाआनन्द तथा शान्ति – सुभाष चन्द शर्मा 25
8. श्री कामाख्या की यात्रा में सत्संग-लाभ – डा. विजय सिंह 30
9. आनन्द योग – डा. जे.पी. शर्मा 33
10. सुख व शांति – अंशुमान देव मालवीय 39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 130.00
द्विवार्षिक	: रु. 250.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

विशेष लेख

सार्वभौम विद्या योग

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

''योग'' आध्यात्म विद्या है। मानव मात्र इसका अधिकारी है। यह एक दूसरी बात है कि कोई व्यक्ति योग की परिभाषा न समझकर इसको अपने मन में साम्प्रदायिकता का स्थान देता रहे। सांप्रदायिक लोग 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' के नियमानुसार अपने मनोनीत नियमों का संकलन करके अपने सम्प्रदाय को चलाते हैं। उनके सभी नियम सभी को प्रिय नहीं होते। हमारी योग विद्या एक इस प्रकार की विद्या है जिसमें ज्ञान और विज्ञान के स्वरूप को समझाकर मनुष्य को पूर्णता की ओर ले जाया गया है।

भगवान पतंजलि देव ने 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध:' कह करके अपने पतंजलि योग दर्शन में योग की परिभाषा बतलाई है। चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ है – चित्त की समस्त वृत्तियों का नितरां रोध अर्थात् सीमा तक पहुँची हुई चित्तवृत्तियों का बिल्कुल ही रुक जाना। चित्तवृत्तियाँ त्रिगुणात्मिका होती हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण – ये तीनों प्रकृति सम्मत गुण हैं। ये तीनों ही गुण योगी के चित्त को मलिन रखा करते हैं। जिस समय चित्त सतोगुण प्रधान रहता है, उस समय रजोगुण और तमोगुण उसके अनुयायी रहा करते हैं। ऐसा सतोगुण प्रधान चित्त आत्मस्वरूप आध्यात्म ऐश्वर्य में प्रेम करने वाला होता है। और इसके विपरीत रज और तम प्रधान चित्त अवैराग्य, अनैश्वर्य, अन्धकार एवं आलस्य की ओर बढ़ाने वाला होता है।

योगी अपने चित्त की त्रिगुण प्रवृत्तियों को हटाकर चित्तवृत्तियों का निरोध करता है एवं अपने आप को केवली भाव की ओर ले जाता है। कैवल्य लाभ करना ही योगियों का परम लक्ष्य है। यह लक्ष्य भूमण्डल पर जन्म लेने वाले हर मानव का हो सकता है। इसका किसी के मजहब या सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं। आवश्यकता तो इस बात की है कि साधक मननशील मनुष्य हो। यह विचारने की आवश्यकता नहीं कि उसका जन्म कहाँ हुआ है? वह किन मन्तव्यों को मानने वाला है? भले ही वह यहूदी हो, फारसी हो, हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हो। मननशील मानव योग का अधिकारी है। यदि उसके मन में योग की सच्ची जिज्ञासा पैदा हो गयी है तो वह योगोपदेष्टा योग्य सच्चे आचार्य गुरु की शरण लेकर इस विद्या में प्रवेश ले सकता है तथा प्रवेश कर लेने के बाद दृढ़तर अभ्यास में लगे रहने वाला व्यक्ति योग की पराकाष्ठा को अवश्य ही पा जाता है। अखिलात्मा योग-योगेश्वर श्री कृष्ण ने अपनी

श्रीमद्भगवद्गीता में छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार बतलाया है :–

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

अर्थात्–युक्त योगी कहलाता ही वह है जो ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा होकर विकार रहित स्थिति को पहुँच गया हो। जिसकी दृष्टि में लोहा, सोना, मिट्टी, पत्थर समान रूप से ही दिखाई देते हों, किन्तु यह स्थिति प्राप्त उसी को हो सकती है जिसने योग का क्रमशः अध्ययन किया हो। योग की वर्णाक्षरी, मन की एकाग्रता से आरम्भ होती है, मन सब शक्तियों का भण्डार है।

इन्द्रियाँ उसको अपने–अपने विभिन्न विषयों में प्रतिक्षण प्रेरित करती रहती है। अतः वह इन्द्रियों के विषय रूप, रस, गन्धादि में भटकता रहता है। योगी का सबसे पहला लक्ष्य है कि रूप, रस गन्धादि में भटकने वाले अपने मन को प्रत्याहार के द्वारा लौटा–लौटाकर धारणा के द्वारा एकाग्र करे। किसी एक लक्ष्य स्थान में चित्त को इकट्ठा करना ही धारणा कहलाती है। यह योगी की पहली वर्णाक्षरी है, जिसका अध्ययन करने वाला साधक धारणा–ध्यान समाधि का अध्ययन करता हुआ संयम तक पहुँच जाता है, एवं संयमित चित्त वाला योगी ही ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो सकता है। ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा के अर्थ को हर व्यक्ति सम्भवतः नहीं समझता होगा। अतः थोड़ा सा स्पष्ट कर देना आवश्यक है। ज्ञान–विज्ञानतृप्तात्मा का अर्थ है प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझकर उस पर पूर्णाधिकार प्राप्त करना। जैसे जल में न डूबना, अग्नि से न जलाया जाना, पाताल प्रवेश करना, आकाश गमन करना। ये सब कार्य प्रकृति के नियमों को समझकर उस पर विजय प्राप्त कर लेने वाली बात है। जो साधक अपनी साधना के बल से प्रकृति के इस प्रकार के सभी नियमों को समझकर उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वह ज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने संयम को उत्कृष्ट बनाकर आत्म साक्षात्कार कर लेता है एवं प्रातिभ, श्रवण, वेदना, आदर्श आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है वह विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। ज्यों–ज्यों साधक आत्म–साक्षात्कार के निकट पहुँचता है, त्यों–त्यों उसके मन में अपने आप ही प्रातिभ ज्ञान का उदय हो जाया करता है। जिस प्रकार प्रातःकालीन ऊषा में हर व्यक्ति को धुंधले–धुंधले प्रकाश में सब मकान आदि दिखलाई देने लगते हैं, उसी प्रकार योगी की बुद्धि में सभी सूक्ष्म–भाव शुद्ध सत्य के रूप में आभासित होने लग जाते हैं। यही उसका प्रातिभ ज्ञान है। प्रातिभ ज्ञान के साथ–साथ दूर–दूर की बातें सुनना, दूर–दूर की वस्तुओं को स्पर्श करना आदि–आदि शक्तियाँ भी योगी के अन्दर स्वाभाविक रूप से उदित हो जाती हैं। इन सब शक्तियों के उदय हो जाने के बाद योगी का मन अपने आप ही आत्मलीन रहने लगता है। वह कूटस्थ हो जाता है। उसकी बुद्धिवृत्ति आत्माकार बनी रहने लगती है। अतः किसी भी विकार का उसके मन में उदय नहीं होता। इस प्रकार की स्थिति में स्थित रहने वाले योगी की दृष्टि में लोहा, सोना, पत्थर सब समभाव से रहने लगते हैं। वह वासना, तृष्णा के जाल से बिलकुल ही दूर हो जाता है। प्राणिमात्र को अपनी आत्मा समझता

है एवं अपने आपको भी प्राणिमात्र के अन्दर आत्मवेग देता है, यही उसकी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई योग स्थिति है। उसकी दृष्टि में वर्णभेद और जातिभेद सब मिट जाते हैं।

अतः योग–विद्या ही एक ऐसी विद्या है जिसको सार्वभौम विद्या कहा जा सकता है, क्योंकि पृथ्वी पर जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति अपने अधिकार भेद से इसके अधिकारी हैं। हमारे पूर्वज महापुरुषों ने अधिकार–भेद को अवश्य माना है। अधिकार भेद का अर्थ किसी जाति–पाँति से सम्बन्ध नहीं रखता, प्रत्युत योग्यता से सम्बन्ध रखता है। जैसे पहली कक्षा में पढ़ने वाला विद्यार्थी उसे उत्तीर्ण करके ही दूसरी कक्षा का अधिकारी बनता है न कि एम.ए., आचार्य आदि का। हाँ! शनैः शनैः पढ़ता हुआ पहली, दूसरी, तीसरी आदि कक्षाओं को क्रमशः उत्तीर्ण करता हुआ अन्त में वह एम.ए. व आचार्य पद तक पहुँच ही जायेगा और कुछ समय के बाद क्रमशः अध्ययन करता हुआ वह उच्चकोटि का विद्वान कहलाने लगेगा। इसी प्रकार से योग–विद्या का विद्यार्थी भी शनैः शनैः क्रमशः अध्ययन करता हुआ अपने परम लक्ष्य तक अवश्य ही पहुँच जायेगा, किन्तु यह देखना आवश्यक होगा कि कौन व्यक्ति किस भूमिका का है। हठयोग, राजयोग, मन्त्रयोग एवं लययोग कि[illegible] रास्ते पर चलने से किसका जल्दी से अधिक उत्थान हो सकता है, इस बात को उसके [illegible]क ही समझेंगे और वे अपने छात्र को जिस मार्ग से चलाना चाहेंगे चलायेंगे एवं उसको बढ़ायेंगे।

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषांजहि कामतृष्णाम्।

अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथा रसमहो नितरां पिब त्वम्।।

(श्रीमद्भागवत् मा. 4/80)

भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है। निरन्तर उसी का आश्रय लिये रहे। अन्य सब प्रकार के लौकिक धर्मों से मुख मोड़ लें। सदा साधुओं की सेवा करें। भोगों की लालसा को पास न फटकने दें तथा जल्दी–से–जल्दी दूसरों के गुण–दोषों का विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान की कथाओं के रस का ही पान करें।

योग का अधिकारी

किसी भी विद्या को प्राप्त करने से पहले अर्हता का प्रश्न आता है, अधिकारी की बात आती है। अधिकारी का तात्पर्य है कार्य को आरम्भ कर उस मार्ग में चलने की क्षमता। लोक में भी डाक्टर, इन्जीनियर बनने के लिए अर्हता (Elegiblity) देखी जाती है इसके लिए परीक्षा होती है यदि परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है तो आगे उस विषय–विशेष के अध्ययन के लिए प्रवेश दे दिया जाता है और नियत समय पर वह उपाधि (Degree) धारक बन जाता है। योग अध्यात्म विद्या है यह सार्वभौम विद्या कही गयी है मनुष्य मात्र इसका अधिकारी है किंतु इसके बावजूद भी विशेष योग्यता प्रवृत्ति व संस्कार आवश्यक बन जाता है। योग गूढ़ विद्या है, सूक्ष्म विद्या है, अमृत विद्या है आत्म ज्ञान की प्राप्ति योग विद्या से ही होती है। योग शास्त्र में आया है 'योगात् संप्रज्ञायते ज्ञानम्' योग से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। संसार में मनुष्य अपनी बुद्धि एवं रुचि के अनुसार धर्म में प्रवृत्त होता है और धर्म के कुछ अंगों का ही पालन कर पाता है। जन्म–जन्म के धार्मिक अनुष्ठान, व्रत, तप तीर्थाटन के पुण्य–फल स्वरूप योग का मार्ग मिल पाता है और योगी गुरु का सानिध्य मिलता है। तभी सिद्ध गुरु की कृपा पूर्वक योग का तात्विक मार्ग मिला करता है।

योग मार्ग तक पहुँचने के लिए सर्वप्रथम जन्म–जन्म का ऐसा उज्ज्वल संस्कार चाहिए जो साधक को साधना में आरूढ़ कर दे। इसी संस्कार के अनुसार ही साधना में संवेग बनता है। मृदु, मध्य, अधिमात्र भेद से संवेग (Force) माने गये और 'तीव्र संवेगानामासन्नः' कहकर यह बतलाया गया है कि जो साधक तीव्र संवेग वाले हैं उन्हें जल्दी अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। तीव्र संवेग वाले साधक अधिमात्रतम श्रेणी के साधक हैं जो शीघ्र अपने लक्ष्य को पा जाया करते हैं। योग की कई शाखायें हैं, प्रत्येक शाखा का अधिकारी हरेक साधक नहीं हो सकता। भगवान् शिव ने अधिमात्रतम साधक को सब प्रकार के योग साधनाओं का अधिकारी बताया है। इस श्रेणी का साधक महावीर्यवान, परमोत्साही, शूरता सम्पन्न शास्त्र का ज्ञाता, अभ्यासशील, धैर्यवान, मोह ममता रहित नवयुवक, अल्पाहारी, जितेन्द्रिय सब प्रकार से निर्भय परम शुद्ध, चतुर, प्राणिमात्र का हित चाहने वाला, दान प्रवृत्ति वाला, शील, स्थिर बुद्धिवाला, बुद्धिमान, क्षमाशील, धर्म का आचरण करने वाला, अपनी चेष्टाओं को या क्रियाओं को गुप्त रखने वाला, मृदुभाषी, शास्त्र पर विश्वास करने वाला, गुरु और देवता का पूजा करने वाला, महाव्याधि रहित एवं जन संसर्ग से रहित तथा विरक्त साधक अधिमात्रतम कोटि का माना गया है। दूसरी श्रेणी का अधिमात्र श्रेणी का साधक माना गया है जो स्थिर बुद्धि वाला, लययोग की इच्छा

वाला, मन बुद्धि व विचारों को अपने आधीन रखने वाला, वीर्यवान, उच्च विचारों वाला, दयायुक्त, क्षमाशील एवं सत्यवादी, नव–युवक, शूरवीर, श्रद्धावान, श्री गुरु चरणों का पूजन करने वाला, योगाभ्यास में रत रहने वाला। वह इस प्रकार का साधक हठयोग का अधिकारी माना गया है और छः वर्ष में सिद्धि को पा जाता है। तीसरे प्रकार का मध्य संवेग का साधक होता है जो समबुद्धि क्षमायुक्त, पुण्याकाँक्षी, प्रिय बोलने वाला, सब कार्यों में मध्यस्थ रहने वाला अर्थात् चित्त की समतावस्था वाला, संशय रहित एवं स्थिर बुद्धि वाला साधक मध्य श्रेणी का साधक कहा जाता है ऐसा साधक लय योग का अधिकारी होता है। ये तीनों योग के उत्कृष्ट अधिकारी माने गये हैं इनके अतिरिक्त मृदु संवेग का साधक होता है। इस श्रेणी का साधक मन्दोत्साही होता है, मूढ़ चित्त, भ्रान्त चित्त, रोगी, गुरु निन्दक, पाप बुद्धि, लोभी, स्त्री लम्पट, अधिक खाने वाला, चपल एवं कातर अत्यन्त कठोर स्वभाव का, पराधीन व रोगी, हीनवीर्य तथा मन्दाचरण वाला होता है। यह सबसे निकृष्ट होता है और केवल मन्त्र योग का अधिकारी होता हैं। और बहुत काल में सिद्धि मिलती है। योग विधा में पारंगत होने के लिए अधिकारी की बात आती है कौन व्यक्ति कितने समय में अपने लक्ष्य को पा जायेगा यह व्यक्ति के अधिकार अर्थात् क्षमता या संवेग पर निर्भर करेगा।

भगवान् ने गीता में कहा है कि जो अज्ञ है और अश्रद्धालु है वह संशयात्मा रहता है और अन्ततोगत्वा अपने मार्ग से च्युत हो जाता है। 'अज्ञश्च अश्रद्धयानश्च संशयात्मा विनश्यति' अज्ञ, अश्रद्धालु और संशयात्मा नाश को प्राप्त होता है अर्थात् पथ भ्रष्ट हो जता है। इसलिए अधिकारी की बात कही गई है। साधक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हो, शास्त्रों का मनन करने वाला हो, मिताहारी हो, यत वाक्‌काय मानस हो, स्थित बुद्धि हो, सुशील और सदाचारी हो, देवता और गुरुदेव का पूजक व सेवक हो, जन संपर्क से दूर रहता हो, अतिवाचाल न हो, निरोगी हो, ऐसा व्यक्ति शीघ्र योग मार्ग में सफलता की ओर बढ़ता है। योग मार्ग में पतंजलि जी महाराज ने नौ विघ्नों का वर्णन किया है। जो श्रेष्ठ अधिकारी है वह इन विघ्नों से पराभूत नहीं होता। जो मन, वाणी और शरीर से कमजोर है वह अन्तराय एवं विघ्नों से घिर जाया करता है। पतंजलि जी महाराज ने नौ विघ्न बताये हैं वे विघ्न हैं –

1. व्याधि– शरीर का रोगी होना। रुग्ण व्यक्ति योग साधन के विभिन्न अंगों का अभ्यास कर ही नहीं पाता है।

2. स्त्यान– चित्त की अकर्मण्यता अर्थात् इच्छा होने पर भी किसी कार्य को करने का सामर्थ्य न होना।

3. संशय– मैं साधना कर पाऊँगा या नहीं, योग सिद्ध होगा या नहीं, मार्ग ठीक है या नहीं आदि–आदि।

4. प्रमाद– साधनों का अनुष्ठान न करना।

5. आलस्य– चित्त व शरीर के भारीपन के कारण ध्यान न लगना रजोगुण व तमोगुण

से साधना में अप्रवृत्ति।

6. **अविरति**– विषयों में तृष्णा बनी रहना अथवा वैराग्य का अभाव।

7. **भ्रान्ति दर्शन**– मिथ्या ज्ञान, कुछ का कुछ समझना।

8. **अलब्ध भूमिकत्व**– समाधि की भूमिकाओं व स्थिती को प्राप्त न कर पाना।

9. **अनवस्थितत्व**– समाधि को पाकर भी उसमें चित्त का न ठहरना। लम्बे समय तक चित्त का एकाग्र न रह पाना।

इस प्रकार से ये नौ अन्तराय या विघ्न कहलाते हैं जो साधक के मार्ग में बाधक बनते हैं। इसके लिए प्रणव एवं अजपा का जाप ही श्रेयस्कर है।

प्रबल संस्कार व स्वाध्याय के बल से अन्तराय नष्ट हो जाते हैं और योग साधना में आगे बढ़ने की योग्यता बन जाती है। मन्त्रजाप से भी, ध्यानाभ्यास से भी अन्तराय हट जाते हैं।

जन्म–जन्मा के जप, तप के अभ्यास से कालान्तर में मन की एकाग्रता बनती है।

योग में हठयोग के अधिकारी विरले ही होते हैं। जिनकी शारीरिक व मानसिक क्षमतायें अल्प हैं वे मन्त्र योग के ही अधिकारी होते हैं। उत्तम साधना के अधिकारी नहीं बल्कि रोगों से घिर जायेंगे और साधना के मार्ग से च्युत हो जायेंगे। उत्तम अधिकारी बनने के लिए प्रयत्न करना चाहिए ताकि श्रेष्ठ साधना को करने की क्षमता बने और आगे बढ़ सके।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।

(गीता 12/16)

जो कभी (सांसारिक प्रिय वस्तु को प्राप्त कर) हर्षित होता है, न उसके नाश होने से द्वेष करता है, न नाश होने पर शोक करता है, न उसको पुनः पाने के लिए इच्छा करता है और जो सभी शुभाशुभ कर्मों के फल का त्यागी है, वह भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

विमर्श: अँधेरे में ही रोशनी के मिलने पर हर्ष, उसके बुझने में द्वेष, बुझ जाने पर चिन्ता और उसे फिर से जलाने की इच्छा होती है; यह शुभाशुभ अंधकार की अवस्था में ही। सूर्य के प्रखर प्रकाश में इनमें से कोई–सी बात नहीं रह जाती।

गुरुभक्ति की साकार मूर्ति

महान सिद्धयोगी अनन्त "श्री चन्द्रमोहन जी महाराज"

आचार्य पूर्णचन्द पन्त

सद्गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का अवतरण 16 अक्टूबर सन् 1909 आश्विन शुक्ला दशमी (विजयदशमी) को ग्राम–अलूपुर जिला–करनाल (हरियाणा) में पवित्र गौड़ वंशीय ब्राह्मण पंडित देवीलाल जी के घर में हुआ था। आपकी माता का नाम चरसी देवी था। आप जन्म से ही योगी थे और योगेश्वर श्री कृष्ण में लय रहा करते थे। चार वर्ष की आयु में आपको श्री कृष्ण के बालरूप में प्रायः दर्शन हुआ करते थे। कभी–कभी आपको श्री कृष्ण के परम तेजस्वी रूप में भी दर्शन हुआ करते थे। आपकी बाललीलायें प्रायः श्री कृष्ण की बाललीलाओं के समान थीं। आपको मक्खन बहुत पसन्द था। तीन–चार वर्ष की अल्पायु में आप अपने घर में रखे मक्खन को चुराकर बड़े चाव से खाया करते थे।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई और फिर उच्च शिक्षा के लिए आपको श्रीमद् दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय लाहौर में प्रवेश दिलाया गया, जो कि उस समय का एक आदर्श गुरुकुल था और तपोमूर्ति आचार्य श्री विश्वबन्धु जी उसके संचालक एवं प्राचार्य थे। बाद में आप लाहौर छोड़कर अमृतसर में शिक्षा ग्रहण करने लगे। शिक्षा काल में आपके मन में योगी बनने की प्रबल भावना जाग्रत हुई और इसी भावना के वशीभूत होकर आप अमृतसर नगर से कुछ मील दूर एकान्त में स्थित एक शिवालय में चले गये और दो महिने वहाँ रहकर बड़े तीव्र संवेग से भगवान शंकर की उपासना करते रहे। अनुष्ठान काल पूरा होने से दो दिन पूर्व आपको स्वप्न में भगवान शंकर के दर्शन हुए और उनका आशीर्वाद प्राप्त हुआ। अगले दिन योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज के दर्शन हुए और उन्होंने यह आदेश दिया– "अब तुम हमारे पास चले आओ।"

इससे सन्तुष्ट होकर अपना अनुष्ठान पूरा करके आप अमृतसर लौट गये और अपने अध्ययन में जुट गये किंतु मन में बार–बार यह प्रश्न उठा करता था कि स्वप्न में दर्शन देने वाले वे महात्मा कौन है और कहाँ रहते हैं? कुछ ही दिन बाद योगिराज मुल्खराज जी महाराज से आपकी भेंट हुई और उनसे श्री प्रभु जी का परिचय पाकर आप उनके दर्शनार्थ योग साधन आश्रम ऋषिकेश पहुँच गये। उस समय आपकी आयु 15 वर्ष के लगभग थी। प्रभु रामलाल जी महाराज ने आपको बड़े प्यार से कुछ दिन अपने पास रखा, शुभ मुहूर्त में विधिपूर्वक योग दीक्षा प्रदान की और आपकी आन्तरिक भावना को देखते हुए आपको योग साधना के लिए वृन्दावन भेज दिया। श्री वृन्दावन धाम में रहते हुए आप नियमपूर्वक गुरूपदिष्ट विधि से प्रातः ब्राह्ममुहूर्त

में तीन घण्टे ध्यानाभ्यास किया करते थे, हर समय गुरुमन्त्र का मानसिक जाप करते रहते थे तथा शाम के समय योगेश्वर श्री कृष्ण के लीलास्थलों के दर्शन किया करते थे। छः महिने के अनवरत अभ्यास से योगविद्या के सभी रहस्य आपके सामने प्रकट हो गये। आपको महावाक्यों का साक्षात्कार हुआ तथा कुण्डलिनी जागरण एवं षट्चक्रभेदन आदि क्रियायें सिद्ध हो गई। आपको तीव्र संवेग से अनन्त मन्त्रजप एवं ध्यानाभ्यासादि में लगे रहने के फलस्वरूप 18 वर्ष की अल्पायु में ही आपको दूरदर्शन, दूर श्रवण वाक् सिद्धि, संकल्प सिद्धि एवं कायनिर्माण आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गई। इन दुर्लभ सिद्धियों को प्राप्त कर लेने पर भी आपको कभी भी रत्तीभर भी अहंकार नहीं हुआ और न आपने अपना ध्यानाभ्यास ही छोड़ा। आपने अपने गुरुदेव प्रभु रामलाल जी को पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण कर दिया। 32 वर्ष की आयु तक आप अगाध श्रद्धा एवं समर्पण भाव से प्रभु जी की सेवा करते रहे। इस बीच प्रभु जी ने कृपापूर्वक आपको खेचरी सिद्ध करा दी तथा योग दीक्षायें देने की आज्ञा प्रदान की और स्वयं कुछ समय के लिए अल्मोड़ा चले गये। दीक्षा देने में अत्यधिक संकोच करते हुए भी आपने अपने गुरुदेव की आज्ञा के पालनार्थ उनकी अनुपस्थिति में कई विरक्त सद्गृहस्थों एवं सन्यासियों को योग दीक्षायें दी और उनकी ऊँची-ऊँची ध्यानस्थितियाँ बनी। यह सब देख हुए भी आप शिष्य ही बने रहना चाहते थे, गुरु बनना आपको बिल्कुल पसन्द नहीं था। आप प्रपंच से बचना चाहते थे और निवृत्ति मार्ग को ही अपनाना चाहते थे। अतः आपके मन में वैराग्य के भाव दिनों दिन प्रबल होते जा रहे थे। सन् 1935 के आस-पास की घटना है, उन दिनों प्रभु रामलाल जी महाराज योग साधन आश्रम ऋषिकेश की व्यवस्था का काम आपको सौंपकर स्वयं अमृतसर में निवास कर रहे थे, इस बीच एक दिन आपके मन में इतना तीव्र वैराग्य जागृत हुआ कि आप मृगछाला, टाट, कमण्डल एवं एक शीशी में बड़ का दूध लेकर हिमालय को प्रस्थान करने लगे। ज्योंही आप आश्रम के द्वार से एक कदम आगे बढ़े, त्योंही पोस्टमैन ने आकर आपको एक पत्र पकड़ाया यह पत्र योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज का था और पत्र में लिखा था-

चिरंजीव! हम हिमालय से आकर बस्तियों में रह रहे हैं और तुम हिमालय की ओर जाने की सोच रहे हो। ऐसा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। तुमने जो कदम आगे बढ़ाया है उसे तुरन्त पीछे हटा लो, यह हमारी आज्ञा है।

पत्र को पढ़कर आपका सारा उत्साह जाता रहा और श्री प्रभु जी को मन ही मन प्रणाम करके आप पीछे हटकर आश्रम के अन्दर चले गये। आपने अपने गुरुदेव को मूक निवेदन किया- प्रभो! आज मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई थी, भविष्य में आपकी आज्ञा के बिना मैं कोई भी कार्य नहीं करूंगा, अब मैं वही करूंगा जो आप चाहेंगे या करवायेंगें। आपके पवित्र आदेशों का पालन करना ही अब मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य रहेगा। तब से लेकर आप सदा-सदा के लिए श्री प्रभु जी के बन गये। आपका मन और बुद्धि श्री प्रभु जी के मन-बुद्धि में लय हो गये। श्री प्रभु जी के लीलावसान के पश्चात् आप तीर्थाटन एवं तपश्चर्या के लिए निकल पड़े

और तीव्र संवेग से कभी वृन्दावन में यमुना जी के तट पर, कभी चण्डी पर्वत पर और ब्रह्मपुरी के निर्जन वनों में तपश्चर्या करते रहे। सन् 1942 में प्रभु जी की प्रेरणा से आप सवाई ग्राम स्थित उनकी पावन तपस्थली 'गुरु का बाग' पहुँचे। वहाँ उनकी गुफा की लिपाई–पुताई की, उसका दरवाजा लगवाया तथा उसके पास ही अपने रहने के लिए घास की एक झोपड़ी बनवायी और वहाँ रहना आरम्भ कर दिया। वह स्थान उस समय एक वीरान जंगल की तरह था। चारों ओर झाड़ी–झंखाड़ थे, जिनमें सर्प एवं बिच्छू रहा करते थे। श्री प्रभु जी की आज्ञा का पालन एवं उनकी पवित्र कीर्ति के विस्तार का उद्देश्य लेकर आप गर्मी, सर्दी एवं मच्छरों का आघात सहन करते हुए उस स्थान पर रहने लगे और योग प्रचार में जुट गये।

आरम्भ में आप योगासन एवं यौगिक क्रियाओं द्वारा रोगियों का उपचार कराते रहे। बाद में उन्हें अपने सामने ध्यानाभ्यास भी कराने लगे। धीरे–धीरे वहाँ रोगियों, आर्तजनों एवं जिज्ञासुओं की इतनी भीड़ एकत्रित होने लगी कि आपको भोजन बनाने का भी समय नहीं मिल पाता था। अतः आप मध्यान्ह दो बजे तक उन लोगों को निपटाकर सवाई ग्राम में पंडित काशीराम पुजारी जी के पास भोजन किया करते थे। भोजन एक समय ही करते थे, रात्रि को निराहार रहकर साधना किया करते थे। ग्राम से लौटकर आप अपने हाथ से सूत्रनेतियाँ तैयार किया करते थे। सन्ध्याकाल में श्री प्रभु जी की आरती पूजन के बाद प्रभु जी के भक्त ग्रामवासी वृद्धजनों से उनकी लीलाकथायें सुनकर आनन्दित हुआ करते थे।

आपने थोड़े से समय में ही उस स्थान को एक सुन्दर आश्रम के रूप में परिवर्तित कर दिया और अपने गुरुदेव की उस पावन तपस्थली का नाम श्री सिद्धगुफा रखा। वहाँ से आपने देश के कोने–कोने में एवं विदेश में श्री प्रभु जी की अमर कीर्ति का विस्तार किया तथा योग विद्या की महिमा से जन–जन को अवगत कराया। आपके सत्प्रयत्नों से सवाई ग्राम ''सवाई धाम'' बन गया और वह पवित्र आश्रम सिद्धपीठ बन गया।

आपने लाखों रोगियों को नीरोग बनाया, लाखों संकट ग्रस्त लोगों का संकट दूर किया, हजारों मरणासन्न व्यक्तियों को जीवनदान दिया और हजारों जिज्ञासुओं को शक्तिपात दीक्षा द्वारा ध्यानयोगी बनाया तथा हिमालय की कन्दराओं में वर्षों से योग साधना में लगे हुए सैकड़ों तपस्वियों को अपने संकल्प से सिद्ध बना दिया। किन्तु इस सबका श्रेय आप अपने गुरुदेव को ही देते रहे, अपने बारे में तो आप सदा यही कहा करते थे कि मैं तो प्रभु जी का एक मामूली सा सिपाही हूँ। वे तो योगेश्वर्य के स्वामी हैं, भण्डार उन्हीं का है, मैं तो एक करछी का काम कर रहा हूँ।

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी अपने गुरुदेव प्रभु रामलाल जी महाराज का चित्र सामने रखकर लोगों को दीक्षा दिया करते थे, उनका चित्र पूजन के लिए दिया करते थे और कहा करते थे कि हम सबके गुरुदेव श्री प्रभु जी सर्वशक्तिमान एवं सर्व व्यापक हैं उनका जितना अधिक चिन्तन करोगे योगमार्ग में उतनी अधिक प्रगति होगी। वे जहाँ भी जाते थे श्री प्रभु जी

की आरती उतारकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके तथा उनका चित्र अपने साथ रखकर जाया करते थे।

हजारों जिज्ञासुओं को एक साथ सिद्ध बना देने की सामर्थ्य रखने वाले, हजारों मील दूर अमेरिका आदि देशों में स्थित कई पवित्रात्माओं को पत्र द्वारा पुष्पप्रसाद अथवा गुफा की रज को प्रसाद रूप में भेजकर ध्यान योगी बना देने वाले एक सिद्ध योगिराज अपने को अकिंचन ही बताते रहे। आपकी ख्याति सुनकर कुछ अमेरिकन वैज्ञानिक "यह जानने के लिए कि आपके अन्दर ऐसी कौन सी शक्ति काम कर रही है तथा सिद्धगुफा की मिट्टी में ऐसी क्या विशेषता है जिससे इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण कार्य हो रहे हैं" वैज्ञानिक उपकरण लेकर सिद्धगुफा पहुँचे और गुफा की मिट्टी तथा आपके शरीर का मशीनों द्वारा परीक्षण किया। जब वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचे तो योगिराज जी मुस्करा कर बोले– विशेषता मुझमें या इस गुफा में कुछ भी नहीं है, विशेषता वाले तो हिमालय में बैठे हुए हैं। उन्हीं की कृपा से सब कुछ हो रहा है। यदि हममें या इस गुफा की पवित्र रज में कुछ विशेषता है भी तो उसे तुम्हारी ये निर्जीव मशीनें नहीं बता सकतीं।

सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के सैकड़ों शिष्य सिद्ध कोटि के हैं जो आपके आशीर्वाद से हिमालय की कन्दराओं में समाधिस्थ हैं। बस्ती में रहने वाले आपके विशेष कृपापात्र शिष्यों में योगिराज श्री श्यामबिहारी शुक्ल, योगिराज श्री रघुनन्दन प्रसाद (टाट वाले बाबा) तथा हठयोगी श्री संसार सिंह आदि के नाम प्रमुख हैं। इनमें श्रद्धेय श्री श्यामबिहारी शुक्ल तो सकल सिद्धियों के स्वामी थे। वे एक समय में आठ–आठ शरीर धारण करके अलग–अलग स्थानों में प्रकट होकर भक्तजनों को दर्शन दे दिया करते थे और उनके काम कर दिया करते थे। शरीर वृद्ध हो जाने पर जब उन्होंने शरीर छोड़ा तो उनके शिष्यों ने रोना–चिल्लाना शुरू कर दिया तो वे दयावश शरीर में लौट आये। कुछ दिन बाद दोबारा शरीर छोड़ा तो शिष्यों का क्रन्दन सुनकर उन्हें पुनः शरीर में लौटना पड़ा। उन्होंने बड़े प्यार से अपने शिष्यों को समझाना शुरू किया– देखो यह शरीर प्रकृति का अंश है, यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच तत्वों से बना है और अन्त में इसे प्रकृति के इन तत्वों में ही मिलना पड़ता है, यह प्रकृति का नियम है। अतः अब तुम लोग मुझे शान्ति पूर्वक जाने दो। तुम लोग भाव–विभोर होकर संकीर्तन आरम्भ कर दो और मैं जाने की तैयारी करता हूँ। यह कहकर सभी भक्तजनों को आशीर्वाद देकर वे पद्मासन में बैठ गये और योगरीति से नश्वर देह का त्याग कर सद्गुरुदेव के नित्यधाम में चले गये।

सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज जहाँ एक आदर्श शिष्य रहे हैं वहीं एक आदर्श गुरु भी हैं। उनके उज्जवल व्यक्तित्व में सत् शिष्य और सद्गुरु का अनूठा सम्मिश्रण है। शास्त्रों में सद्गुरु के जो लक्षण बताये गये हैं वे आपके व्यक्तित्व में अक्षरशः पाये जाते हैं।

जैसे–

आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तोविमत्सरः।
योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मको शुचिः।।
गुरुभक्ति समायुक्तो पुरुषज्ञो विशेषतः।
एवं लक्षण सम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात् जो स्वयं आचार्य हो, वेदों उपनिषदों का ज्ञाता हो, विष्णुभक्त हो, किसी से ईर्ष्या–द्वेष न रखता हो, योग में पारंगत हो, योग में दृढ़ निष्ठा वाला हो, योग परायण हो, पवित्र रहने वाला हो, अनन्य गुरुभक्त हो तथा परमात्मा का पूर्णरूपेण साक्षात्कार कर चुका हो इन लक्षणों से युक्त महापुरुष ही गुरु कहलाने का अधिकारी है।

ऐसे सर्वसमर्थ सिद्धयोगिराज को गुरु रूप में पाकर हमें अपने को महान सौभाग्यशाली समझना चाहिए और यह बात कभी भूलनी नहीं चाहिए कि हम सिद्धयोग के विद्यार्थी हैं। परम करुणा सागर श्री सद्गुरुदेव, सिद्धेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज तथा उनके पूर्ववर्ती, सभी सिद्धयोगेश्वर, हमें सिद्धलोक में विचरण करते हुए देखना चाहते हैं। वे सभी हमसे यही अपेक्षा रखते हैं कि हम सद्गुरु प्रदत्त योग की अमरनिधि की रक्षा और संवर्धन करते हुए अनवरत आत्मोत्थान की ओर बढ़ते रहें। आप अन्तर्यामी रूप से हमारे साथ रहते हुए हमारी साधारण से साधारण क्रिया तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों को देख रहे हैं। सभी प्रकार के कल्याणकारी कार्यों तथा शुभ संकल्पों की पूर्ति में वे प्रच्छन्न रूप से हमारी सहायता कर रहे हैं।

हम सबका यह परम कर्त्तव्य है कि हम श्री सद्गुरुदेव जी के दिव्य आदर्शों एवं आपके अनुभूत सिद्धान्तों को सम्मुख रखकर आप जैसा आदर्श शिष्य एवं साधक बनने का प्रयत्न करें, आपकी पवित्र कीर्ति का विस्तार करें तथा आपके कल्याणकारी आदेशों का पालन करते हुए अपने जीवन को सफल बना लें। ऐसा कोई निन्दित कार्य न करें जिससे सद्गुरु देव की पवित्र कीर्ति पर धब्बा लगे और हम पतन के गर्त पर जा गिरें। "गुरु लोपो न कर्तव्य स्वच्छन्दो यदि भावयेत्" गुरुगीता के इस पवित्र वचन के अनुसार सद्गुरुदेव को कभी भी अपने से दूर नहीं करना चाहिए, एक क्षण के लिए भी उनका विस्मरण नहीं होना चाहिए।

(सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पावन जन्मशताब्दी समारोह पर सादर समर्पित श्रद्धा–सुमन)

श्री विजयदशमी 28 अक्टूबर 2009

श्री हनुमान जी ने देखी
"लंकापति रावण की हवेली"

आचार्य गयाप्रसाद भारद्वाज व्याकरणाचार्य

जनक नन्दिनी सीता जी की खोज करते हुए हनुमान ने राक्षस राज रावण की सुन्दर हवेली को देखा, जहाँ चार दाँत तथा तीन दाँतों वाले हाथी इस विस्तृत भवन को चारों ओर से घेरकर खड़े थे और हाथों में हथियार लिये बहुत से राक्षस उसकी रक्षा कर रहे थे। रावण का वह महल उसकी राक्षस जातीय सुमुखी पत्नियों तथा पराक्रम पूर्वक हर कर लायी हुई राज कन्याओं से भरा हुआ था। इस प्रकार नर नारियों से भरा हुआ वह कोलाहलपूर्ण भवन नाके और मगरों से व्याप्त, तिमिंगलों और मत्स्यों से पूर्ण वायु वेग से विक्षुब्ध तथा सर्पों से आवृत्त महासागर के समान प्रतीत होता था, जो लक्ष्मी कुबेर, चन्द्रमा और इन्द्र के यहाँ रहती थी, वही रावण राज के घर में नित्य ही निश्चल होकर रहती थी। जो समृद्धि महाराज कुबेर, यम और वरुण के यहाँ दृष्टिगोचर होती है, उससे भी बढ़कर राक्षसों के घरों में देखी जाती थी। उस एक योजन लंबे और आधे योजन चौड़े महल के मध्य भाग में एक दूसरा भवन पुष्पक विमान का था, जिसका निर्माण बहुत सुंदर ढंग से किया गया था। वह भवन बहुसंख्यक मतवाले हाथियों से युक्त था, जिनके गण्डस्थलों से दानवारि टपक रहा था। भ्रमर दानवारि का पान कर प्रमत्त हो रहे थे। पवन कुमार हनुमान जी ने फिर उसे देखा– वह सब प्रकार के रत्नों से विभूषित पुष्पक नामक दिव्य विमान स्वर्गलोक में विश्वकर्मा ने ब्रह्माजी के लिए बनाया था। कुबेर ने बड़ी भारी तपस्या करके ब्रह्माजी से प्राप्त किया और कुबेर को बलपूर्वक परास्त करके राक्षस राज रावण ने उसे अपने हाथ में ले लिया। उसमें भेड़ियों की मूर्तियों से युक्त सोने, चाँदी के सुन्दर खम्भे बनाये गये थे, जिनके कारण वह भवन अद्‌भुत क्रान्ति से उदीप्त सा हो रहा था। उसमें सुमेरु और मंदराचल के समान ऊँचे अनेकानेक गुप्त गृह मंगल भवन बने थे, जो अपनी ऊँचाइयों से आकाश में रेखा सी खींचते जान पड़ते थे, उनके द्वारा वह विमान सब ओर सुशोभित था। उनका प्रकाश अग्नि और सूर्य के समान था। विश्वकर्मा ने बड़ी कारीगरी से उसका निर्माण किया था, उसमें सोने की सीढ़ियाँ और अत्यन्त मनोहर उत्तम वेदियाँ बनायी गयी थीं, सोने और स्फटिक के झरोखे और खिड़कियाँ लगायी गयी थी। इन्द्रनील और महानील मणियों की श्रेष्ठतम वेदियाँ रची गयी थी, उसके फर्श विचित्र मूंगे बहुमूल्य मणियों तथा अनुपम गोल–गोल मोतियों से जड़ी गयी थी, जिससे उस विमान की बड़ी शोभा हो रही थी, सुवर्ण के समान लाल रंग के सुगन्ध युक्त चन्दन से संयुक्त होने के कारण वह बाल सूर्य के समान जान पड़ता था, महाकपि हनुमान जी उस दिव्य पुष्पक विमान पर चढ़ गये, जो नाना प्रकार के सुन्दर कूटागारों, अट्टालिकाओं से अलंकृत था। वहाँ बैठकर

वे सब ओर फैली हुई नाना प्रकार के पेय भक्ष्य चोष्य एवं अन्न की दिव्य गन्ध सूँघने लगे। वह गन्ध मूर्तिमान पवन सी प्रतीत होती थी। जैसे कोई बन्धु बान्धव अपने उत्तम बन्धु को अपने पास बुलाता है, उसी प्रकार वह सुगन्ध उन महाबली पवनकुमार को मानो यह कह कर कि ''इधर चले आओ'', जहाँ रावण था, वहाँ बुला रही थी। तदन्तर हनुमान जी उस ओर प्रस्थित हुए, आगे बढ़ने पर उन्होंने एक बहुत बड़ी हवेली देखी, जो बहुत ही सुन्दर और सुखद थी, वह हवेली रावण को बहुत ही प्रिय थी। ठीक वैसे ही, जैसे पति को कान्तिमय सुन्दर पत्नी अधिक प्रिय होती है।

उसमें मणियों की सीढ़ियाँ बनी थी और सोने की खिड़कियाँ शोभा बढ़ाती थी। उसकी फर्श स्फटिक मणि से बनायी गयी थी, जहाँ बीच-बीच में हाथी के दाँतों के द्वारा विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनी हुई थी। मोती, हीरे, मूँगे, चाँदी और सोने के द्वारा भी उसमें अनेक प्रकार के आकार अंकित किये गये थे।

मणियों के बने हुए बहुत से खम्भे, जो समान सीधे बहुत ही ऊँचे और सब ओर से विभूषित थे। आभूषण की भाँति उस हवेली की शोभा बढ़ा रहे थे, अपने अत्यन्त स्तम्भ रूपी पंखों से मानो वह आकाश को उड़ती हुई जान पड़ती थी। उसके भीतर पृथ्वी के वन, पर्वत और चिन्हों से अंकित एक बड़ा कालीन बिछा हुआ था। राष्ट्र और गृह आदि के चित्रों से सुशोभित वह शाला पृथ्वी के समान विस्तीर्ण जान पड़ती थी, वहाँ मतवाले विहंगमों के कलरव गूँजते रहते थे तथा वह दिव्य सुगन्ध से सुवासित थी, उस हवेली में बहुमूल्य बिछौने बिछे हुए थे तथा स्वयं राक्षसराज रावण उसमें निवास करता था।

वह अगुरू नामक धूप के धुँए से धूमिल दिखायी देती थी, किंतु वास्तव में हंस के समान श्वेत एवं निर्मल थी, पत्र पुष्प के उपहार से वह शाला चितकबरी-सी जान पड़ती थी अथवा वशिष्ठ मुनि की शबला गौ की भाँति सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाली थी, उसकी कान्ति बड़ी ही सुन्दर थी। वह मन को आनन्द देने वाली तथा शोभा को भी सुशोभित करने वाली थी, वह दिव्यशाला शोक का नाश करने वाली तथा सम्पत्ति की जननी सी जान पड़ती थी। हनुमान जी ने उसे देखा, उस रावण पालित शाला ने उस समय माता की भाँति शब्द स्पर्श आदि पाँच विषयों से हनुमान जी की श्रोत्र आदि पाँचों इन्द्रियों को तृप्त कर दिया। उसे देखकर हनुमान जी यह तर्क वितर्क करने लगे कि यही स्वर्गलोक है। देवलोक हो, यह इन्द्र की पुरी अमरावती भी हो सकती है। उस शाला में सुवर्णमय दीपकों को एकतार पंक्तिबद्ध जलते देखा, मानो वे ध्यान मग्न हो रहे थे। ठीक उसी तरह जैसे किसी बड़े जुआरी से जुए में हारे हुए छोटे जुआरी धन नाश की चिन्ता के कारण ध्यान में डूबे हुए से दिखाई देते हैं, दीपकों के प्रकाश रावण के तेज और आभूषणों की कान्ति से वह सारी हवेली जलती हुई सी जान पड़ती थी।

तदनन्तर हनुमान जी ने सुन्दर कालीन पर बैठी हुई सहस्त्रों सुन्दर स्त्रियाँ देखी, जो रंग बिरंगे वस्त्र और पुष्पमाला धारण किये अनेक प्रकार की वेश-भूषाओं से विभूषित थी।

आधी रात बीत जाने पर वे रतिक्रीड़ा से उपरत हो मधुपान के मद और निद्रा के वशीभूत हो। उस गाढ़ी नींद में सो गयी थी। उन सोयी हुई सहस्त्रों नारियों के कटिभाग में अब करधनी की खनखनाहट का शब्द नहीं हो रहा था। उनके पैरों के घुंघरू स्तब्ध थे, हंसों के कलरव तथा भ्रमरों के गुंजारव से रहित विशाल कमलवन के समान उन सुप्त सुन्दरियों का समुदाय बड़ी शोभा पा रहा था। हनुमतलाल ने उन सुंदरी युवतियों के मुख देखे, जिनसे कमलों की सी सुगंध फैल रही थी। उनके दाँत ढके हुए थे और आँखें मुंद गयी थी। रात्रि के अन्त में खिले हुए कमलों के समान उन सुंदरियों के जो मुखारविन्द हर्ष से उत्फुल्ल दिखायी देते थे, वे ही फिर रात आने पर सो जाने के कारण मुंदे हुए दलवाले कमलों के समान शोभा पा रहे थे। मतवाले भ्रमर प्रफुल्ल कमलों के समान इन मुखारविंदों की प्राप्ति के लिए मानो बार–बार प्रार्थना कर रहे हों, ऐसा प्रतीत हो रहा था। रावण की वह हवेली उन स्त्रियों से प्रकाशित होकर वैसा ही शोभा पा रही थी, जैसे–शरदकाल में निर्मल आकाश ताराओं से सुशोभित एवं प्रकाशित होता है। उन सुंदर स्त्रियों से घिरा हुआ राक्षसराज रावण तारों से घिरे हुए कान्तिमान नक्षत्रपति चन्द्रमा के समान शोभा पा रहा था। मानो आकाश से भोगावशिष्ट पुण्य के साथ जो तारायें नीचे गिरती हैं वे सबकी सब रावण की हवेली में सुन्दरियों के रूप में एकत्रित हो गयी हैं। वहीं उन युवतियों के तेज, वर्ण और प्रसाद स्पष्टतः सुन्दर प्रभा वाले तारों के समान सुशोभित होते थे। मधुपान के अनन्तर नृत्य गान रतिक्रीड़ा के समय जिनके केश खुलकर बिखर गये थे। पुष्पमालायें मर्दित होकर छिन्न–भिन्न हो गयी थी और सुन्दर आभूषण भी शिथिल होकर इधर–उधर खिसक गये थे, वे सभी रमणियाँ, वहीं निद्रा से अचेत सी होकर सो रही थीं। मस्तक की बिंदिया सिन्दूर आदि पुंछ गये थे, किन्हीं के नुपूर पैरों से निकलकर दूर जा पड़े थे तथा किन्हीं सुन्दर युवतियों के हार टूटकर उनके बगल में ही पड़े थे। कोई मोतियों के हार टूट जाने से उनके बिखरे दानों से आवृत्त थी, किन्हीं के वस्त्र खिसक गये थे और किन्हीं की करधनी की लड़ें टूट गयी थीं। वे युवतियाँ बोझ ढोकर थकी हुई अश्वजाति के बछेड़ियों के समान थी। कानों के कुण्डल गिर गये थे, किन्हीं की पुष्पमालायें जाकर छिन्न–भिन्न हो गयी थी। इससे वे महान वन में गजराज द्वारा दलीमली गयी पुष्पलताओं के समान प्रतीत हो रही थी। किन्हीं के चन्द्रमा और सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान हार उनके वक्षःस्थल पर पड़कर उभरे हुए प्रतीत होते थे। वे उन युवतियों के स्तनमण्डल पर ऐसे जान पड़ते थे, मानो वहाँ हंस सो रहे हों। दूसरी स्त्रियों के स्तनों पर नील द्वारा दाग पड़े थे, जो जल काक पक्षी के समान शोभा पा रहे थे तथा अन्य स्त्रियों के उरोजों पर जो सोने के हार थे वे चक्रवाक नामक पक्षियों के समान जान पड़ते थे। इस प्रकार वे हंस कारण्डव तथा चक्रवाकों से सुशोभित नदियों के समान शोभा पाती थी, उनके जघन प्रदेश उन नदियों के तटों के समान जान पड़ते थे, वे उस दिव्य हवेली में सोयी हुई सुन्दरियाँ वहाँ सरिताओं के समान सुशोभित हो रही थी। किंकिणियों (घुंघरूओं) के समूह उनके मुकुल के समान प्रतीत होते थे। सोने के विभिन्न आभूषण ही वहाँ बहुसंख्यक स्वर्णकमलों की शोभा

धारण करते थे। भाव ही मानो ग्राह थे तथा यश किन्हीं सुन्दरियों के कोमल अंगों में तथा कुचों के अग्रभाग पर उभरी हुई, आभूषण की सुन्दर रेखायें नये गहनों के समान ही शोभा पाती थी।

किन्हीं के मुख पर पड़े हुए उनकी झीनी साड़ी का अंचल उनकी नासिका से निकली हुए सांस से कम्पित हो बारबार हिल रहे थे। नाना प्रकार के सुन्दर रूप रंग वाली उन रावण पत्नियों के मुखों पर हिलते हुए ये अंचल सुन्दर कान्तिवाली फहराती हुई पताकाओं के समान शोभा पा रहे थे।

वहाँ किन्हीं-किन्हीं सुन्दर, कान्तिमयी, कामिनियों के कानों के कुण्डल उनके निश्वासजनित कम्पन्न से धीरे-धीरे हिल रहे थे। उन सुन्दरियों के मुख से निकली हुई स्वभाव से ही सुगन्धित श्वास वायु शर्करानिर्मित आसव की मनोहर गन्ध से युक्त हो और भी सुखद बनकर उस समय रावण की सेवा करती थी। रावण की कितनी ही तरुणी पत्नियाँ रावण का मुख समझकर बारबार अपनी सौतों के ही मुखों को सूँघ रही थीं। उन सुन्दरियों का मन रावण में अत्यन्त आसक्त था। इसलिए वे आसक्ति तथा मदिरा के मद से परवश हो, उस समय रावण के मुख के भ्रम से अपनी सौतों का मुख सूँघकर उनका प्रिय ही करती थी अर्थात वे भी उस समय अपने मुख संलग्न हुए उन सौतों के मुखों को रावण का ही मुख समझकर उसे सूँघने का सुख उठाती थीं।

एक स्त्री दूसरी की छाती पर सिर रखकर सोयी थी, तो कोई दूसरी स्त्री उसकी भी एक बाँह को ही तकिया बनाकर सो गयी थी। इसी तरह एक अन्य स्त्री दूसरी की गोद में सिर रखकर सोयी थी तो कोई दूसरी उसके भी कुचों का ही तकिया लगाकर सो गयी थी।

इस तरह रावण विषयक स्नेह और मदिराजनित मद के वशीभूत हुई वे सुन्दरियाँ एक दूसरी के उरू पार्श्वभाग, कटिप्रदेश तथा पृष्ठभाग का सहारा लें, आपस में अंगों से अंग मिलाये, वहाँ बेसुध पड़ी थी। वे सुन्दर कटिप्रदेश वाली समस्त युवतियाँ एक दूसरे के अंगस्पर्श को प्रियतम का स्पर्श मानकर उससे मन ही मन आनन्द का अनुभव करती हुई परस्पर बाँह से बाँह मिलाये सो रही थी।

एक दूसरे के बाहुरुपी सूत्रों में गुँथी हुई काले-काले केशों वाली स्त्रियों की वह माला सूत में पिरोयी हुई। मतवाले भ्रमरों युक्त पुष्पमाला की भाँति शोभा पा रही थी। मधुमास (बसन्त) में मलयानिलके सेवन से जैसे खिली हुई लताओं का वन कम्पित होता रहता है। उसी प्रकार रावण की स्त्रियों का वह समुदाय निश्वास वायु के चलने से अंचलों के हिलने के कारण कम्पित होता सा जान पड़ता था। जैसे लतायें परस्पर लिपट जाती हैं और इसीलिए उनके पुष्प समूह भी आपस में मिले हुए से प्रतीत होते हैं तथा उन पर उड़ते हुए भ्रमर भी परस्पर मिल जाते हैं। उसी प्रकार वे सुन्दरियाँ एक दूसरी से मिलकर माला की भाँति गुथ गयी थी। उनकी भुजायें और कंधे परस्पर सटे हुए थे। उनकी वेणी में गुँथे हुए फूल भी आपस में मिल गये थे तथा उन सबके केशकलाप भी एक दूसरे से जुड़ गये थे।

यद्यपि उन युवतियों के वस्त्र, अंग, आभूषण और हार उचित स्थानों पर ही प्रतिष्ठित थे। यह बात स्पष्ट दिखाई दे रही थी। तथापि उन सबके परस्पर गुथ जाने के कारण यह विवेक होना असम्भव हो गया था कि कौन वस्त्र आभूषण अंग अथवा हार किसके है। रावण के सुख पूर्वक सो जाने पर वहाँ जलते हुए सुवर्णमय प्रदीप उन अनेक प्रकार की कान्तिवाली कामिनियों को मानो एक टक दृष्टि देख रहे थे। राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, दैत्यों, गन्धर्वों तथा राक्षसों की कन्यायें काम के वशीभूत होकर रावण की पत्नियाँ बन गयी थी। उन सब स्त्रियों का रावण ने युद्ध की इच्छा से अपहरण किया था और कुछ मदमस्त रमणियाँ कामदेव से मोहित होकर स्वयं ही उसकी सेवा में उपस्थित हो गयी थीं।

वहाँ ऐसी कोई स्त्रियाँ नहीं थीं, जिन्हे बल पराक्रम से सम्पन्न होने पर भी रावण उनकी इच्छा के विरुद्ध बलात हर लाया हो, वे सब की सब उसे अपने अलौकिक गुण से ही उपलब्ध हुई थीं। जो श्रेष्ठतम पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के ही योग्य थी, उन जनक किशोरी सीता को छोड़कर दूसरी कोई ऐसी स्त्री वहाँ नहीं थी, जो रावण के सिवा किसी दूसरे की इच्छा रखने वाली हो अथवा जिसका पहले कोई दूसरा पति रहा हो। रावण की कोई भार्या ऐसी नहीं थी, जो उत्तम कुल में उत्पन्न न हुई हो अथवा जो कुरूप अनुदार या कौशलरहित उत्तम वस्त्राभूषण एवं माला आदि से शक्तिहीन तथा प्रियतम को अप्रिय हो। उस समय श्रेष्ठ बुद्धि वाले वानरराज हनुमान जी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि ये महान राक्षसराज रावण की भार्यायें जिस तरह अपने पति के साथ सुखी है। उसी प्रकार यदि रघुनाथ जी की धर्मपत्नी सीता जी इन्हीं की भाँति अपने पति के साथ रह कर सुख का अनुभव करती अर्थात् यदि रावण शीघ्र ही उन्हें श्रीरामचन्द्र जी की सेवा में समर्पित कर देता तो यह इसके लिए परम मंगलकारी होता।

फिर उन्होंने सोचा, निश्चय ही सीता गुणों की दृष्टि से इन सबकी अपेक्षा बहुत ही बढ़-चढ़कर है। इस महाबली लंकापति ने मायामय रूप धारण करके सीता को धोखा देकर इनके प्रति यह अपहरण महान कष्टप्रद नीच कर्म किया है।

इस प्रकार हनुमान जी ने राक्षस राज रावण की अलौकिक हवेली को देखा। जो स्वर्ग से भी सुन्दर थी।

सद्गुरु कृपालीला

जगदीश राए बंसल 'अधम'

दोहा–

दाता के दरबार में, खड़े सभी हाथ जोड़।
देने वाला एक है, मांगत लाख करोड़।।

काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज किस पर, किस तरह और किस समय अपनी कृपाएँ कर दें, यह तो जन साधारण के बूते से बाहर की बात है। मगर प्राणी मात्र के भाग्य विधाता करूणा सागर गुरु देव जी महाराज अपने बच्चों पर प्रति पल कृपाएँ करते ही रहते हैं। शायद ही कोई ऐसा गुरु भाई रहा होगा, जिस पर कोई गुरु कृपा न हुई हो। एक भाई के भजन की लाइनें ठीक ही हैं :–

गुरु देव के प्यारे बच्चों को,
पग–पग पै सहारा मिलता है।

इसी तरह का एक कृपा प्रसंग आदरणीय गुरु भाई श्री मूलचन्द ने दिनांक तीन जुलाई 2009 को पल–पल स्मरणीय आराध्यदेव गुरु जी महाराज के दरबार पवित्र नगरी ऋषिकेष आश्रम में बताया।

आदरणीय भाई जी 62 वर्षीय श्री मूलचन्द ने अपनी भार्या श्री मति ओमपति के साथ सन् 1974 में योग प्रशिक्षण केन्द्र सिद्ध गुफा सवाई बाग में दीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त किया था। गुरु भक्ति से ओत–प्रोत यह हरियाणवी दम्पत्ती अपने दो पुत्रों देवेन्द्र (44) और राजू (34) तथा सात पौत्र–पौत्रियों के परिवार में गाँव पलहेड़ी जो जिला पानीपत से बराना रोड पर मात्र 12 कि.मी. की दूरी पर बसा है, निवास करते हैं। भाई जी का पैतृक व्यवसाय मिट्टी के बर्तन बनाने का है, जो आजकल विद्युत प्रणाली द्वारा संचालित है।

प्रस्तुत कृपा प्रसंग सन् 2003 के गर्म मौसम का है। इस प्रसंग में यह सहज ही समझ में आ जाना चाहिए कि श्री सद्गुरु और शिष्य का संस्कार बहुत ही प्रगाढ़ होता है। बात ऐसे हुई कि अपने आराध्यदेव के आलाशं, ये गुरु भाई, जगत नियन्ता श्री प्रभु जी एवं अनाथ नाथ सर्व शक्ति मान गुरु जी की सायंकालीन आरती में मस्त थे कि अचानक गिर गए। भाई जी की धर्मपत्नी श्रीमति ओम पति एवं प्रिय पौत्र सन्दीप ने इनको उठा कर बैठाया। भाई जी बैठ तो गए मगर उच्चारण बन्द हो गया। हुआ यह कि शरीर के दाएं भाग आँख, हाथ और पैर में

(अर्धांग में) लकवे का प्रकोप हो गया। मगर भाई जी की निष्ठा देखिए जो कि एक भजन की लाइन में कहा है–

चित ना भक्त का डोला।

नाम तेरा अन मोला।।

अर्थात भाई जी प्रसन्नचित्त से आरती में मानसिक रूप से मस्त रहे। आरती के साथ–साथ ये विचार भी उछलते रहे जो एक भजन की पंक्ति में इस प्रकार है–

ध्यान तेरा करते–करते तुझ में ही खो जाऊँ मैं,

तेरी गोद में हे सिद्धेश्वर, छत्त फोड़ मर जाऊँ मैं

जीवन के अनमोल सफर का, ऐसा ही इन्तजाम करो।

लाखों पापी तारे गुरु जी, मेरा भी उद्धार करो।।

भाई जी ने यह प्रार्थना भी की कि 'गुरु जी इस समय आरती करते–करते आपके श्री चरणों में मेरा अन्त हो जाए तो इससे अच्छा अवसर मुझे कभी नही मिलेगा। आप ही समझाया करते थे कि 'अन्त मति सो गति'।''

इस प्रकार भाई जी द्वारा ज्यों ही आरती प्रभो पाहि आपन्न मामीश शम्भो के साथ पूरी हुई, त्यों ही आ गई लहर शिया के मन में' श्री सद्गुरु के तेजांश, भाग्यशाली आदरणीय भाई जी श्री मूलचन्द को एक दिव्य आवाज सुनाई दी कि 'लल्ला तुम गणेश जी का ध्यान करो, सब ठीक हो जाएगा।' यह चिर परिचित आवाज और किसी की नहीं, अपने प्राणदाता त्रिजगपावन करुणा निकेतन गु॰५५वें श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की आवाज थी। अतः गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर भाई जी तुरन्त इष्ट देव भगवान श्री गणेश जी का ध्यान करने लगे। ध्यान करते–करते जीवन–मरण के संघर्ष में यह प्रार्थना करने से भी नही चूके–

बिगड़ी बनाने वाले, बिगड़ी बना दे।

भवर में है नैया, मेरी पार लगा दे।।

शरण में हूँ दाता, मेरी जान बचा दे।

अपराध किया है, माफ करा दे।। बिगड़ी.....

इस प्रकार एक तरफ भाई जी दाता से तरह–तरह की मूक प्रार्थना कर रहे हैं और दूसरी तरफ किसी अनिष्ट की आकांक्षा से भयभीत अश्रुपूर्ण परिवार जगह–जगह फोन कर रहा है और अपने घरेलू डा. गुरुभाई श्री ओम प्रकाश को भी शीघ्र पहुँचने को कहा गया, जो यहाँ से लगभग 10 कि.मी. की दूरी पर कैमला गाँव में रहते हैं। भाई जी इन्हीं डा. से दो दिन पहले शरीर में कुछ गड़बड़ बताकर दवाई लाए थे।

इसी ऊहा–पोह के चलते भाई जी को शरीर में एक शक्ति संचार का अनुभव हुआ। भाई जी आगे बताते हैं कि 'जो कुछ हुआ वह वाणी का विषय नहीं है। मगर उन क्षणों को मैं

किसी भी जन्म में नहीं भूल पाऊंगा। इस प्रकार सर्व समर्थ्य, करूणा सागर योग-योगेश्वर गुरु जी श्री चन्द्र मोहन महाराज जी ने मुझे जीवन दान दिया। मैं समझता हूँ कि न केवल जीवन दान दिया, बल्कि इस रोग से आजीवन आरोग्य दान भी दिया। परिणामत: मैं तीसरे ही दिन अपने कार्य से जुड़ गया।' यह कहना है अपने श्रद्धालु भाई मूलचन्द का।

कुछ पल गुरु दरबार में एक टकी के पश्चात् चेहरे पर श्रद्धाभाव बखेरते हुए, दाएँ हाथ की अँगुली से इंकित करते हुए भाईजी पुन: बोले, बाबू जी! प्राणदाता द्वारा यह मेरी पहली प्राण रक्षा नहीं है। इससे पहले भी पल-पल के रक्षक ने मेरी प्राण रक्षा की थी।

बात सन् 2001 की है। मैं समस्त परिवार के साथ अपने भानजे की शादी में भात भरने के लिए गाँव मैरो खेड़ा जि. जीन्द के लिए चला। इन छोटे रूटों पर और शादियों के दिनों में स्वारी मिलना आसान बात नहीं है। अत: हम एक थ्री व्हिलर लोड गणेश स्कूटर में सवार हो गए। स्कूटर वाला एक भैंस को पहुँचाने उसी दिशा में जा रहा था। ड्राइवर ने जनानी सवारी और बच्चे अपने साथ आगे बैठा लिए और भैंस का मालिक एवं अन्य ड्राइवर वाली छत के ऊपर बैठ गए। मैं पीछे डाले पर खड़ा हो गया जो करीब तीन इंच चौड़ा ही होगा और ऊपर वाले पाइप को पकड़े रखा। कुछ देर तक तो सब कुछ ठीक रहा। स्कूटर अपनी स्वाभाविक गति से दौड़ रहा था कि अचानक मेरे द्वारा पकड़े गए ऊपर वाले पाइप का एक किनारा टूट गया। परिणामत: मेरे पैर नीचे लुढ़क गए और केवल वह पाइप जो एक साइड ही लगा रह गया था, मेरे हाथों में रह गया अर्थात् मैं स्कूटर के साथ पाइप पकड़े लटकता चला। इस अवस्था में और इस गति से सड़क पर गिरते ही मृत्यु निश्चित थी। मगर कहते हैं कि:-

जाको राखे साईयां, मार सके ना कोई।
बाल न बांका करि सके, जो जग बैरी होई।।

इस घटना को देखते ही भैंस के मालिक ने जोर से हल्ला करके वाहन को तुरन्त रुकवाया। मुझे लगा किसी ने मुझे सहारा दे रखा था अन्यथा यों लटके रहना भी असम्भव ही है।

इस प्रकार पल-पल रक्षक दया सागर प्राण दाता ने मुझे जीवन-दान दिया। मुझे घबराहट एवं चूट-पूट के अतिरिक्त कुछ नहीं हुआ। और समय रहते अपने गन्तव्य को पहुँच गए।

इस प्रकार करूणा निधान गुरुदेव भगवान क्षण-क्षण पल-पल अशरण शरण का अनवरत कल्याण कर रहे हैं। हमने आराध्य देव को स्थूल शरीर रहते इतना नहीं जाना, जितना अब पत्रिका एवं गुरु ग्रन्थों के माध्यम से जाने जा रहे हैं। इस पहचान के आधार पर, ऋषिकेश आश्रम से सम्बंधित बद्री लीला पर एक भजन गुरु चन्द्र मोहन वाले, करन तपस्या बड़ी भारी की अन्तिम कड़ीयाँ खरी उतरती हैं:-

गुरु चन्द मोहन कोई और नहीं, ये सिद्ध गुरु हमारे हैं।
मात यशोदा की गोदी खेले, वो ही नन्द दुलारे हैं।
यमुना किनारे गऊ चराई, ये काले कम्बल वाले हैं,
मधुबन में जो तान सुनाई, वो ही वंशी वाले हैं,
अर्जुन को गीता ज्ञान दिया था, हैं वो ही कृष्ण मुरारी।।
गुरु चन्द मोहन वाले...........
जो छम–छम छम–छम जोगी नाचै, वो ही अन्तर्यामी हैं
जो डम–डम डम–डम डमरू बाजे, वो ही अलख निरंजन हैं।
चन्दा जिसके मस्तक सोहै, वो ही कमण्डल धारी हैं
जटा में जिसके गंगा बहती, ये ही धोती कुर्ते वाले हैं
बड़े सं ़ार से मिले गुरु जी, यू अधम सदा बलीहारी
गुरु च न्द मोहन वाले..........

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत।।

-श्रीमद्‌भागवद् गीता

तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, द्रोहहीनता और अपने मान-सम्मान के अभिमान का अभाव ये सब तो हे अर्जुन! दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

हम इस संसार में खाली हाथ आते हैं और खाली हाथ ही जाते हैं, यह सभी जानते हैं, पर यह भौतिक स्थिति है। जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि में हमारे हाथों में भौतिक पदार्थ आते रहते हैं, इसलिए खाली हाथ वाली हमारी धारणा सही मालूम होती है पर असल बात कुछ और ही है। वास्तव में न हम खाली हाथ आते हैं और न खाली हाथ जाते हैं। हमारे स्थूल शरीर वाले हाथ ही खाली होते हैं बाकी सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म हाथ तो हमारे द्वारा पूर्व जन्मों में अभुक्त कर्मों के फल से भरे हुए रहते हैं और जब इस जन्म में शरीर छोड़ते हैं तब भी हमारे सूक्ष्म शरीर के सूक्ष्म हाथ खाली नहीं होते, पिछले कर्मों में शेष बचे कर्म और इस जन्म में किए गये शुभाशुभ कर्म हमारे हाथों में होते हैं। जिनके हाथों में अच्छे कर्म होते हैं वे दैवी सम्पदा के स्वामी होते हैं।

नेपाल धाम के दिव्य दर्शन

मोतीराम गर्ग, अलूपुर

प्रत्यक्ष रूप में दिखा दिया, प्रभूजी ने अपना धाम।
नेपालधाम की छटा निराली, शोभा स्वर्ग समान।।
स्वर्ण जड़ित हिमगिरी, घाटी अति विशाल।
ऋषि मुनि शोभा पाते, प्रभू ने किया कमाल।।
निर्मल जल के बने सरोवर, जिन में कमल खिले।
सिंह बकरया एक साथ, घूम–घूम कर चले।।
अमरावती से सुन्दर उद्यान, चारों ओर खिले।
हंस मोर सारस चहकते, जो लगते बहुत भले।।
निर्मल जल के झरने गिरते लगते बड़े सुहाने।
साधू संत नहाते उनमें, भुजा ऊपर ताने।।
पारिजात के वृक्षों की लगी थी एक पंक्ति।
दर्शन करने छूने से हो जावे शीघ्र मुक्ति।।
वायु गति से चलते विमान, मन को मोह लेते।
देख–देख इनकी अद्‌भुत कला कामी धीरज खोते।।
सोलह दल का कमल खिला सिंहासन अति विशाल।
हीरे पन्ने लगे हुए थे, लटके मोतियन माल।।
पटके चंदोवे शोभा देते, जिन में चित्रकारी प्यारी।
घूम–घूम कर देखी हमने, ऐसी वहाँ की शोभा न्यारी।।
धूप दीप की गन्ध उड़े, चारों तरफ सुहाई।
प्रभू रामलाल के गुण गावे, संतमुनि समुदाई।।
चार योजन ऊँचा था ये प्रभू का दिव्य दरबार।
सभी देव कर रहे स्तुति हो रही जय जयकार।।
उस सिंहासन पर प्रभू बिराजे जग के पालनहार।

इस झाँकी का जो करे दर्शन, भव से हो जै पार।।
उससे ऊपर जा कर देखा, जहाँ महादेव बिराजे।
भवे जिनकी लम्बी लम्बी, वे समाधि से थे जागे।।
एक श्वांस में स्वर्ग समाया, दूसरे से प्रगटा ब्रह्माण्ड।
एक स्वर से वेद निकले, द्विज लोग करते कर्मकांड।।
ऐसा प्यारा पावन दृश्य ये योगध्यान में आया।
मोती राम ने अपनी कलम से इसे भाषा बद्ध बनाया।।

लभंते सिकतासु तैलमपि यत्रतः पीडयन्
पिबच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपा सार्दितः।
कदाचिदपि पर्यटंछशविषाण मासादयेत्,
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत्।।

–भर्तृहरि नीति शतक

कदाचित् कोई युक्तिवान व्यक्ति, किसी तरकीब से, रेत में से भी तेल निकाल ले, यह सम्भव हो सकता है, मृगतृष्णा से प्यासे व्यक्ति की प्यास बुझाना भी किसी तरह सम्भव हो सकता है, बहुत खोजने पर शायद खरगोश के भी सींग मिल जायें, परंतु हठ पर अड़े हुए मूर्ख व्यक्ति के चित्त को, कोई भी व्यक्ति वश में नहीं कर सकता।

सच्चा आनन्द तथा शान्ति

सुभाष चन्द शर्मा, सहारनपुर

सच्चे भक्त को जिस प्रकार भगवान के दर्शन के लिए आतुरता होती है, उसी प्रकार भगवान भी अपने प्यारे भक्तों के दर्शन के लिए आतुर होते हैं। संत तुकाराम के चरित्र में कथा आती है। पंढरपुर में भगवान के दर्शनों के लिए इतनी अधिक भीड़ होती है कि सुबह के गये हुए मनुष्यों को सध्या समय तक विट्ठलनाथजी के दर्शन हो पाते हैं। एक समय लक्ष्मीजी ने भगवान से पूछा कि इतने अधिक भक्त आपके दर्शनों के लिए आए हैं, फिर भी आप उदास क्यों हो?

प्रभु ने कहा– ये सब तो स्वार्थी एकत्रित हुए हैं। ये सब मुझे देखने नहीं, मुझसे कुछ न कुछ चाहने आए हैं, परंतु जिसके दर्शन करने की मेरी इच्छा है वह अभी तक आया नहीं। लक्ष्मीजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने प्रभु से पूछा– ऐसा कौन है जिसके दर्शन की आपको इच्छा हो रही है। प्रभु ने कहा– मेरा तुका मुझे दीख पड़ता नहीं।

तुकाराम को उस दिन बुखार आ गया था। शैया पर पड़े–पड़े विट्ठल जी को याद करते हुए तुकाराम मन में विचार कर रहे थे, कि मुझे बुखार आया हुआ है। आज विट्ठल जी के दर्शन करने नहीं जा सकूँगा। क्या प्रभु के दर्शन के बिना ही दिन चला जाएगा? मेरे विट्ठलनाथ जी मेरे घर क्या दर्शन देने नहीं आयेंगे?

यहाँ भक्त के दर्शन करने के लिए भगवान की आतुरता बढ़ी। उन्होंने लक्ष्मीजी से कहा– ये सब मेरे लिए नहीं आए हैं। एक तुकाराम ही मेरे लिए आता है। ज्वर के कारण वह आज आ नहीं सकता। चलो, मैं ही उसके यहाँ चलूँ। हजारों लोग पंढरपुर में विट्ठलनाथ जी के दर्शन करने के लिए आये थे और परमात्मा पधारे थे केवल तुकाराम के यहाँ।

परमात्मा से शरीर से मिलना संभव नहीं। मनुष्य का शरीर तो विष्ठा, मूत्र से भरा अमंगल है। इस शरीर जैसी मलिन वस्तु दूसरी कोई नहीं। यह शरीर गन्दा है। इसमें से सतत् दुर्गन्ध निकलती है। शरीर का बीज अपवित्र है। देवता अपने शरीर से दूर–दूर खड़े रहते हैं। इस शरीर से ब्रह्मसम्बन्ध हो सकता नहीं। ब्रह्मसम्बन्ध मन से करना पड़ता है। शरीर से परमात्मा से मिलना असंभव है। जिन संतों को भगवान् प्रत्यक्ष मिले हैं उनका शरीर हमारे जैसा नहीं। सतत् भगवद् भक्ति करने से उनका शरीर भी कुछ दिव्य बन जाता है।

आध्यात्मिक शरीर का अर्थात् सूक्ष्म शरीर का ही ईश्वर के साथ मिलन होता है। सूक्ष्म शरीर सत्रह तत्वों का बना हुआ है। पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन और

शुद्ध। यह मन मरता है तथा सूक्ष्म शरीर मरता है और भक्ति रस मिलता है, मुक्ति मिलती है। शरीर मरने से मुक्ति मिलती नहीं। पूर्वजन्म के शरीर का नाश हो जाता है, परंतु पूर्वजन्म के कर्म को लेकर यह जीवात्मा आता है। जीवात्मा के साथ मन जाता है। मन मरने से मुक्ति मिलती है। मन का निरोध ही मुक्ति है। परमात्मा से तन से नहीं, मन से मिलना है।

मनुष्य प्रकृति के तीनों गुणों में फँसा हुआ रहता है। दिन में रजोगुण में, रात्रि में तमोगुण में और भगवद्‌भजन में हृदय आर्द्र बने तब सत्वगुण में। रामायण में इन तीनों गुणों का उदाहरण आया है। विचार करके देखो तो इन तीन गुणों का स्वरूप ध्यान में आ जाएगा।

विभीषण सत्वगुण के स्वरूप है। रावण रजोगुण का स्वरूप है। कुम्भकर्ण तमोगुण का स्वरूप है। कुम्भकर्ण का चरित्र कैसा है? वह बहुत खाता है और सोया रहता है। निद्रा, आलस्य–यह तमोगुण का धर्म है। कितने ही लोग रोज तो नहीं परंतु रविवार के दिन कुम्भकर्ण जैसे हो जाते हैं। वे ऐसा समझते हैं कि रविवार तो छुट्टी का दिन है। छुट्टी के दिन खूब खाना और खूब आराम करना चाहिए। अरे, खूब खाने से और खूब आराम करने से तन और मन दोनों बिगड़ जाते हैं। जिसका समय निद्रा में, प्रमाद में और आलस्य में बहुत व्यतीत होता है तो समझना कि वह मनुष्य तमोगुणी है।

''आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः।''

मनुष्य का आलस्य के समान कोई शत्रु नहीं। इस यंत्रयुग में लोगों की अब काम करने की इच्छा नहीं होती, बैठा रहना ही बहुत अच्छा लगता है। प्राचीन काल में सब मेहनत करते थे, परंतु इस यंत्रयुग में शक्ति का नाश हुआ, मनुष्य में आलस्य बढ़ गया। यंत्र से थोड़े समय में बहुत काम हो जाता है। लोग ऐसा समझते हैं कि हमको बहुत सुख भोगना चाहिए। मनुष्य को बहुत आराम मिले वह भी ठीक नहीं। आराम मिले पीछे प्रभु का स्मरण नहीं करे, भक्ति न करे तो तन और मन दोनों बिगड़ जाते हैं।

बहुत आराम न करो। परोपकार में शरीर को थकने दो। जब तक शरीर थक न जाय तब तक खाट पर न पड़ो। दो तीन मिनट में ही निद्रा आ जाने का विश्वास हो तब ही खाट पर पड़ो। निद्रा न आये तब तक निरन्तर जप करो। निवृत्ति के समय खाट में पड़ने के पीछे तुमको जो सतत् याद आवे उसमें ही तुम फँसे हो ऐसा मानना। कितने ही जीव खाट पर पड़ने पर व्यापार के बारे में विचार करने लगते हैं। कितने ही खाट पर पड़े पीछे कामान्ध बनते हैं। बहुत थोड़े भाग्यशाली जीव खाट पर पड़े ईश्वर स्मरण करते हैं। प्रभु के नाम का जप करते–करते ही सो जाओ और ब्रह्ममुहूर्त में प्रभु के नाम का जप करते–करते ही उठो तो तुम्हारी निद्रा भी भक्ति बन जाएगी।

कुम्भकर्ण तमोगुण का स्वरूप है। रावण कुम्भकर्ण की अपेक्षा ठीक है। कुम्भकर्ण तो खूब खाता है। बिना कुछ किये ही बैठा रहता है या ऊँघता रहता है और तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करता। रावण आलस्य में न तो सोता रहता है, न फालतू बैठा रहता है; सारे दिन कुछ न कुछ

खटपट करता रहता है परंतु इसकी प्रवृत्ति बलहीन है।

तमोगुण की अपेक्षा रजोगुण ठीक है परंतु रजोगुणी मनुष्य का मन चंचल होता है। काम और क्रोध, रजोगुण के पुत्र हैं।

''काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव:।''

रजोगुण मन में आवे तो मन चंचल हो जाता है। बुद्धि ईश्वर से विमुख बने तो रजोगुण आ जाता है। रजोगुण मन को बहुत चंचल बनाता है। रजोगुणी को सच्चे सुख की खबर नहीं होती, शरीर सुख और इन्द्रिय सुख के लिए जो समस्त दिन प्रवृत्त (लगा) रहे वह रजोगुणी है। इस शरीर को थोड़ा सुख देने की जरूरत है परंतु शरीर का सुख, इन्द्रियों का सुख–यह तुम्हारा सुख नहीं। तुम शरीर से अलग हो।

अहं द्रष्टुतया सिद्धो देहोदृश्यतया स्थित:।
ममायमिति निर्देशात् कथं स्याद्देहक: पुमान्।।

मनुष्य बोलता है–मेरी आँख, मेरी जीभ, मेरा शरीर। यह शरीर जो दीखता है, उसको देखने वाला शरीरी (आत्मा) अलग है। जड़ शरीर की इन्द्रियों से चेतन आत्मा अलग है। आत्मा जो शरीर से अलग है तो आत्मा का सुख भी शरीर सुख से अलग होना चाहिए परंतु अधिकांश भाग में मनुष्य सारे दिन इन्द्रियों के सुख में ही फँसा रहता है और इसीलिए प्रवृत्ति करता है।

रावण के दस शीश थे अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय। इन दस इन्द्रियों के सुख के लिए ही जो सतत् प्रयत्न करता है वह रावण जैसा है। इन्द्रियों का सुख तो पशु और पक्षी भी भोगते हैं। मनुष्य को मिठाई खाने में जो मजा आता है, वह मजा तो घास खाने में बैलों को भी आता है। दोनों का मजा समान है। कितने ही गरीब लोगों को दु:ख होता है कि हमको कुछ सुख नहीं मिलता। कोठी, बंगले में रहने वाले और मोटर में घूमने फिरने वाले बहुत सुख भोगते हैं। कोई विलासी गृहस्थ संसार का सुख बहुत भोगता हो, उसे देखकर तुम किसी दिन हृदय नहीं जलाना।

कोई मनुष्य संसार का सुख भोगता हो, उसका चिंतन नहीं करना। उस मनुष्य की बुद्धि तो बिगड़ी हुई है। उसको सच्चे सुख की खबर नहीं और इसी से यह भुलावे में पड़ा है, परंतु अनेक बार लोग ऐसा समझते हैं कि यह जैसा सुख भोगता है, ऐसा सुख मुझको नहीं मिलता। इन श्रीमंत लोगों को मोटर में घूमते हुए बहुत मजा आता है। बंगले में रहता है पलंग पर मखमल के गद्दों पर लोटता है, इसलिए यह बहुत सुखी है। इन श्रीमान को पलंग पर लोटते हुए जो मजा आता है वैसा मजा तो गधे को धूल पर लोटने में भी आता है। दोनों का मजा समान है।

संसार के सभी मजे परिणाम में मोटी सजा देने वाले होते हैं। यह जीव अनेक जन्मों

से तथा इस जन्म में भी संसार की सभी मौजों का अनुभव कर लेता है परन्तु फिर भी इसे शान्ति नहीं मिलती। यह जीव अनेक बार अनेक प्रकार की योनियों में पुरुष बना है तथा स्त्री भी बना है। हजारों जन्म से यह इन्द्रिय सुख भोगता आ रहा है, परंतु इसकी तृप्ति नहीं होती। तृप्ति भोग से होती भी नहीं। तृप्ति तो त्याग से होती है। संसार के विषय में आनन्द खोजने वाला अधिक दुःखी होता जाता है। आज सुख देने वाला पदार्थ कल दुखदायी सिद्ध होता है। जो सुख देता है वह दुःख भी देता है।

संयोग से सुख होता है परंतु क्या यह संयोग स्थिर रहता है? संयोग तो वियोग के लिए ही होता है। संयोग में जितना सुख होता है उससे हजार गुना दुःख वियोग में होता है। एक दैवी जीव था। जन्म से ही उसको प्रभु–भक्ति का रंग लग गया। घर में अपार संपत्ति थी। उसका त्याग करके वह वृन्दावन में जाकर रहने लगा। श्रीराधाकृष्ण की सतत उपासना करता, सेवा स्मरण में देहानुसंधान भूल जाता। सर्व–इन्द्रियों का संयम रखकर सतत् भक्ति करता था। मुख पर दिव्य तेज था।

एक बार कोई राजा–रानी घूमते–फिरते वहाँ आ पहुँचे। उस समय संत तो वृक्ष के नीचे बैठकर मानसिक सेवा कर रहे थे, परमात्मा को मन से रिझाते थे। चौबीस–पच्चीस वर्ष की अवस्था थी। मुख के ऊपर दिव्य कांति थी।

रानी को आश्चर्य हुआ कि इतना सुन्दर युवक! अर्द्ध नग्न बदन बैठा है। सुन्दर काया को घिस डाला है। युवावस्था को व्यर्थ कर रहा है। इसकी अपेक्षा तो यह बेचारा संसार सुख भोगे तो बहुत सुखी रहेगा।

राजा को भी यह बहुत अच्छा लगा। उसने बहुत आग्रह किया–मेरे राजमहल में चलो। तुमको संसार के सुख की कुछ खबर ही नहीं है। मेरी इच्छा है कि तुम संसार का सुख भोगो।

अत्यन्त आग्रह करके राजा संत को राजमहल में ले आया। उसको नहला–धुलाकर सुन्दर कपड़े पहनाये। सुन्दर भोजन कराया। महात्मा पहुँचा हुआ था। अन्दर से भक्ति का पक्का रंग लगा हुआ था। पागल जैसा रहता था। राजा इसको समझाता था– तुम संसार में आए हो, परंतु कोई सुख भोगते नहीं। तुमको कुछ भी खबर नहीं। तुम यहीं पर सुख से रहो।

महात्मा ने कहा– संसार में सुख भोगने वाले को दुःख भी होता है। मुझे सुख–दुःख कुछ भी नहीं चाहिए। राजा ने कहा–ठीक है, तुमको कुछ भी दुःख नहीं होना है। एक सुन्दर कन्या के साथ तुम्हारा विवाह करवा दूँगा। अपने राज्य का कुछ हिस्सा तुमको दे दूँगा। फिर तुमको क्या दुःख है?

महात्मा ने पूछा– यह विवाह करने की बात तो तुम करते हो, परंतु जो सन्तान होंगी उनका क्या होगा?

राजा ने कहा– उनका कुछ नहीं, उनकी तुमको तनिक भी चिन्ता नहीं करनी। तुमको

राज्य मिल जाएगा, फिर किस बात की चिन्ता है? फिर भी तुमको ऐसा लगता है तो उनके पालन–पोषण करने की जिम्मेवारी मेरी, फिर और क्या? तुम्हारे स्वरूप को देखकर मुझे अतिशय आनन्द होता है। संसार में आए हो तो सुख भोगो। कुछ भी कष्ट नहीं आवेगा। मैं सारी व्यवस्था कर दूँगा।

महात्मा ने कहा– तुम सब व्यवस्था तो कर दोगे, सुख भी दे दोगे, परंतु सन्तान होने के बाद कदाचित् सन्तान मर जावे तो? उसका दुःख तुमको होगा कि मुझको? राजा को कहना पड़ा कि वह दुःख तो मुझको नहीं, तुमको ही होना है। महात्मा ने कहा– तो फिर मुझे ऐसा सुख चाहिए नहीं। मैं वृन्दावन में श्रीराधाजी की सेवा करता था, वही उत्तम था। महात्मा फिर राजमहल को छोड़कर चलता बना।

जो सुख भोगता है उसको इच्छा से अथवा अनिच्छा से दुःख भोगना ही पड़ता है। संसार में आनन्द कहाँ है? कहा भी है, ''संसार दुखसागर'' संसार तो दुःख का समुद्र है। संसार में प्रत्येक जीव दुःखी है। कबीरजी ने कहा है।

जो देखा सो दुखिया, देखा तन धरि सुखी न देखा।
उदे अस्त की बात कहत हौं, ताकर करो विवेका।।
बाट बाट सब कोई दुखिया, क्या विरही, बैरागी।
जोगी दुखिया, जंगम दुखिया, तापस को दुख दूना।
आसा तृष्णा सब घर व्यापै, कोई महल नहीं सूना।।

संसार के सुख की आशा तृष्णा जीव को बहुत दुःखी करती है। भोग की भूख ही महान दुःख है। शान्ति उसकी कायम रहती है, जिसका मन प्रभु के चरणों में लगा रहता है। शान्ति उसकी कायम रहती है जो अन्दर से ईश्वर का अनुसन्धान रखता है। ईश्वर से जो दूर है उसको शान्ति कैसी? कुछ भी सुख भोगना नहीं है ऐसा दृढ़ निश्चय करके संसार के विषय भोगों से विमुख रहने वाले को सच्चा आनन्द सच्ची शान्ति प्राप्त होती है। सद् गुरुदेव जी की कृपा से आत्मा के स्वरूप में जो स्थित रहता है उसे ही स्थिर शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है।

जो चित्त आत्मा में निवेशित हो गया है और जिसके सारे मल समाधि के द्वारा धुल गये हैं, उसके आनन्द का वाणी के द्वारा वर्णन नहीं हो सकता, केवल अन्तःकरण द्वारा अनुभव किया जा सकता है।

श्री कामाख्या की यात्रा में सत्संग-लाभ

डा. विजय सिंह

वार्ता में समय और दूरी का भान ही नहीं रहा था। प्रकृति का विधान हमारी काया का संचालन ठीक-ठाक करता है। अन्यथा आधार भित्ति रूपी स्थूल काया नष्ट हो जाये। भूख, प्यास, नींद, अन्य शारीरिक क्रियायें स्वत: अन्त: प्रक्रिया से समय-समय पर मन को ज्ञात होता है। मन बुद्धि को, इन्द्रियाँ द्वारा प्रेषित सूचना देकर, बुद्धि के निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए पुन: मन कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों को दिशा निर्देश देता है। सेकेण्ड के हजारवें भाग में यह सब सम्पादित हो जाता है। भूख लगते ही मन खाद्य पदार्थ ढूँढ़ने के लिए ज्ञानेन्द्रियों को सचेष्ट कर दिया। तभी प्रभु कृपा से एक केला बेचने वाला कोच की गैलरी में आया। छोटे-छोटे पीले सुपक्व कदली फल की शोभा अनूठी लगी। उसे बुलाकर दस रुपये का केला लिया (दिया पन्द्रह) खाने में मिठास के साथ सुगन्ध एवं छिलका कागज जैसा पतला। चिनिहवा केला इसका नाम हमारे सहयात्री ने बताया। इसमें कुछ औषधीय गुण अन्य केलों की अपेक्षा अधिक हैं। मेरे आग्रह पर सहयात्री महानुभाव ने ससंकोच दो केले लिये। मुझे भूख लगी थी अत: खाने में मगन हो गया।

पेट के अन्दर हजारों प्रकार की ग्रंथियाँ, नाड़ी संजाल, ज्ञान वाही तंतु अब तृप्ती का संदेश मन को दे रहे थे। मैं अपने सह यात्री से पुन: वार्ता में जुटने का पहल किया। बोला- देखें! कैसी सुन्दर बातें आप बता रहे थे परंतु अभी कुछ पल पहले मेरी अंतड़ियाँ मन पर भूख का दबाव प्रेषित कर रही थीं। अब सब ठीक है।

वे हँसते हुए बोले- भाई मेरे! हम, हमारा, मेरा, मैं से कहा जाने वाला, दो अलग-अलग चीजों का संगठन है। काया जड़ तथा आत्मा चेतन तत्व है। मानव शरीर में इन दोनों का संगठन प्रभु ने अद्‌भुत रूप में किया है। आत्मा का निवास यह शरीर नव द्वारों वाला दुर्ग बताया गया है। तीन परकोटों से घिरा (स्थलू शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर) जीवात्मा इसमें निवास करता है।

हमने कहा- आपका कथन बड़ा रोचक है। बहुत पारदर्शिता से इन आध्यात्मिक चीजों को आपने समझा है। मेरे श्री सद्‌गुरु देव जी ने योग के सैद्धान्तिक पक्ष को खूब ठीक-ठीक समझाया है। पातंजलि दर्शन, गीता, उपनिषदों के गूढ़ार्थों को बहुत ही सरल भाषा में प्रभु व्यक्त किये हैं। योग सिद्धान्त भाग एक और दो के रूप में उनके द्वारा योग-प्रबोध दिया गया है। यहाँ इस समय साथ नहीं हैं परंतु आप अपना पता दीजिएगा तो उन ग्रंथों को आपके पास भेज दूँगा। योग पर लिखी अद्वितीय ग्रंथ हैं।

मैं यह सब एक सांस में बोलकर चुप हो गया। वे स्नेहिल दृष्टि से मुझे देखते हुए बोले– समय और साधकों की पात्रता को देखकर ही परम गुरु प्रबोध करते हैं। सद्गुरु तत्व एक ही है। वही श्री कृष्ण रूप में प्रयोजनार्थ अर्जुन को निमित्त बनाकर गीता का संदेश, संसार को दे गये हैं। वही तत्व भगवान पातंजलि रूप में, योग–दर्शन के सूत्र संरचना के द्वारा दिये हैं। अभिव्यक्ति हर घट का भिन्न–भिन्न हो सकता है परंतु सार सम्बोध वही होता है। महात्मा चरण दास जी के पद अभी सुनाया था आपको। उन्होंने जिन ग्रंथों की रचना किया है उसमें ज्ञान, भक्ति, योग, स्वर विज्ञान आदि गूढ़ तत्वों को लिखा है। कबीर, ज्ञानदेव, सूर, मीरा, तुलसी रैदास कितने अनेक नाम, सबमें सार एक ही है। इस अमूल्य मानव शरीर पाकर भी जिसने प्रकृति की विकृतियों तथा चेतन तत्व आत्मा को नहीं जान सका तो उसका यह जन्म भी व्यर्थ ही चला गया।

मैंने कहा– मुझे योग–मार्ग में एक और भयंकर खतरा दिखता है। वह क्या? मैं सोचते हुए कहा– श्री सद्गुरु कृपा से जब साधक में थोड़ी शक्ति जाग्रत होती है तब साधक अहंकार परवस सद्गुरु का ही अहित करने की कुचेष्टा करता है, कई दृष्टान्त मुझे ज्ञात हैं।

महानुभाव ने कहा– तब भी ऐसे दुष्ट साधकों पर भी सद्गुरु की कृपा–दृष्टि बनी ही रहती है। परंतु प्रकृति एवं सद्गुरु कृपा–शक्ति विलासनी महाशक्ति कुण्डलिनी ऐसे साधकों के रज एवं तम प्रधान संस्कारों के असंख्य भोगों (कष्ट एवं दुख:) को कर्मासय से खींच–खींच कर भुगतान कराने लगती है। तब महाकष्ट को भोगकर पुन: सत्व में प्रतिष्ठित होने पर सद्गुरु के कृपा का भाव इन साधकों में कालान्तर में जागृत हो ही जाता है। सद्गुरु जिसकी भी बाँह गहते हैं उसे मोक्ष के दरवाजे पर पहुँचा कर ही छोड़ते हैं।

भाई! नैतिक–जीवन यापन करने वाले साधक में ही आध्यात्मिकता प्रगट होता है। आध्यात्म के परिसमाप्ति पर सद्गुरु अनुग्रह, भगवत्त अनुग्रह होने पर भागवत–जीवनानन्द प्रकट होता है। इसलिए हमें सावधान रहना चाहिए। आध्यात्मिक उन्नति के लिए सबसे बड़ा अन्तराय कर्तत्व अभिमान है। मेरे में अवश्य कुछ अन्य से विशेष है इसलिए श्री सद्गुरु मुझे मान देते हैं। बस: पतन आरम्भ यहीं से होता है। ऐसी सोच साधक को अन्तरायों में ला पटकता है। जो सद्गुरु भाव भावित साधक होते हैं, उन्हें विशेष उग्र प्रयत्न साधना में नहीं करना पड़ता है। ऐसे साधक प्राणायामादि न भी करते हों परंतु मात्र ध्यान करने से ही उनमें प्राण की समस्त क्रियायें होने लगती हैं। श्री गुरु समर्पित साधक को जितना जैसा आदेश मिला है, वही यदि नियमानुवर्तिता से श्रद्धापूर्वक करता जाय, उसके अतिरिक्त किसी प्रकार की क्रिया या चिन्तन उसके लिए वर्जनीय है।

जैसे किसी को यह आदेश मिला है दो घण्टे जाप एवं एक घण्टे ध्यान करते रहा करो। तो उसे ऐसा ही करना चाहिए। इसके साथ भक्ति भाव और आत्मनिवेदन और जोड़ सके तो

सोने में सोहागा की कहावत चरितार्थ होगा। इससे अभिमान शून्य क्रिया होगी। शरीर में शक्ति और उत्साह का संचार सर्व बाधाओं का अतिक्रमण करता जायेगा।

अल्पकाल निष्तब्ध रहकर, मेरे सुनने में अभिरुचि देखकर बोले– सद्गुरु दर्शन हेतु चित्त में व्याकुलता, आनन्द का विषय है। यह साधक में सद्गुरु कृपा से ही जाग्रत होता है। सद्गुरु मानव शरीर में परम सत्ता को समेटे हुए हैं। वे धर्म के मूल स्त्रोत से प्रकट हुए हैं। संसार की संरचना एवं प्रलय का ज्ञान जिन्हें हस्तामलक ज्ञात है। सद्गुरु के वचन अनुभव पर आधारित है। उसमें सत्य ही प्रतिध्वनित होता है। अत: मूढ़ से मूढ़ भी सद्गुरु सानिध्य पाकर, उनके वचनों को सुनकर प्रबुद्ध जीव बन जाते हैं। सहज ही विश्वास हृदय में स्वयं उत्पन्न होता है। सद्गुरु का हृदय शिष्य के हृदय में सार्थक स्पन्दन द्वारा उत्तम मनोभावों की स्थापना करते हैं। सच्चा योगी ही सद्गुरु हो सकते हैं परंतु सभी योगी सद्गुरु नहीं होते। सत्य का कोई सम्प्रदाय नहीं होता। सद्गुरु का भी कोई सम्प्रदाय नहीं होता। मैं उनकी बातों को सुनते हुए बीच में बोल पड़ा– बिल्कुल ठीक बात आप बता रहे हैं। मेरे सद्गुरु भगवान लौकिक रूप में वर्ण व्यवस्था एवं शुचिता का पूरा ध्यान रखते थे। परंतु सदपात्र चाहे मुसलमान हो, इटैलियन हो, आस्ट्रेलियन हो, रसियन हो वे उन पर भी कृपा दृष्टि अपने अन्तरंग शिष्यों की भांति ही रखते रहे हैं।

उनको हमने अपने ग्राम कछवा के योग जिज्ञासु कमरुद्दीन पर सद्गुरु भगवान द्वारा कृपा शक्ति से हुए उसके आध्यात्मिक विकास की कथा सविस्तार सुनाया। भगवान शिव तथा अन्य देवी देवताओं के दर्शन। ज्योति में नाना प्रकार के दिव्यानुभूतियाँ तथा जिज्ञासा करने पर पैगम्बर मोहम्मद के अनोखे दर्शन की बातें बताई। वे आनन्दित होते हुए सद्गुरु महिमा सुनते रहे। क्रिस्टोफर हिल के साथ आये सिडनी महोदय पर कैसी अलौकिक कृपा विश्व योग सम्मेलन में सद्गुरु भगवान ने दिल्ली में किया था। उसका विस्तार पूर्वक कथोपकथन करता रहा। ट्रेन द्रुतगति से गन्तव्य की ओर भागी जा रही थी।

कोई भी मनुष्य पूर्णत: दोषरहित नहीं है, कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो स्वत: सम्पर्ण हो अथवा जो स्वयं पर्याप्त बुद्धिमान हो। अत: हममें पारस्परिक सहनशीलता होनी चाहिए। हमें एक-दूसरे को आश्वासन, पारस्परिक सहायता, शिक्षा और उपदेश देते हुए मिलजुल कर उत्साहपूर्वक भगवान के मार्ग में चलना चाहिए।

आनन्द योग

डा. जे.पी. शर्मा, पाँटा साहिब (हि.प्र.)

जिन खोजा तिन पायीया, गहरे पानी बैठि।
मैं बौरी ढूंढन गई, गई किनारे बैठि।।

सागर रत्नों का अथाह भंडार है। अगर रत्नों को प्राप्त करने वाला समुद्र के तट पर बैठकर आशा करे कि उसे मोती, मूँगा इत्यादि मिल जाये, ऐसा कदापि संभव नहीं है। सागर से रत्नों की प्राप्ति के लिए तो उसे सागर में कूदकर सागर के सतह (तलहटी) पर जाना होगा, तभी उसे कुछ रत्नों की प्राप्ति होगी। इसका दूसरा भाव है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए आपको निरंतर साधना में लगे रहना होगा, तभी आप उस ब्रह्म से अपना नाता जोड़ पायेंगे। आत्मा का परमात्मा से मिलना ही योग कहा गया है। ब्रह्म कोई कोरी कल्पना मात्र पदार्थ नहीं है। 'ब्रह्म' शाश्वत सत्य है, सत्यता में ही परम आनन्द है इसीलिए ब्रह्म को 'परमानन्द' कहा जाता है।

एक कुत्ता कई दिनों से भूखा था। खाना ढूंढता-ढूंढता एक नदी के किनारे पहुंच गया। वहाँ एक पेड़ था। पेड़ के पत्ते झड़ चुके थे। पेड़ की एक शाखा पर एक रोटी लटक रही थी। उस पेड़ और रोटी की परछाई नदी के पानी में पड़ रही थी। कुत्ते ने नदी के पानी की तरफ देखा तथा समझा कि पानी में रोटी पड़ी है। कुत्ते ने आनन-फानन में भूख से व्याकुलता के कारण नदी में छलाँग लगा दी। छलाँग से पानी हिला तो रोटी आगे को जाती हुई दिखाई दी। कुत्ता और आगे बढ़ा तो रोटी और आगे बढ़ती हुई प्रतीत हुई। इस तरह वह बार-बार आगे बढ़ता गया तथा बार-बार रोटी भी आगे बढ़ती मालूम देने लगी। अन्त में कुत्ता नदी की तेज धारा में पहुँच गया तथा डूबकर मृत्यु को गले लगा बैठा।

इसी प्रकार मनुष्य भी, हर क्षण- हर पल भूखा घूमता फिर रहा है। जन्म-जन्मान्तर से जिस आनन्द की प्राप्ति की उत्कृष्ट इच्छा तू अपने मन में पाले खोजता घूम रहा है, क्या कभी तनिक सोचा है- जिसके पास धन दौलत है, वह आनन्दित है तथा धन दौलत की लालसा में, धन रूपी पानी में छलाँग लगा रहा है, परंतु फिर भी आनन्द नहीं मिला तथा आनन्द रूपी रोटी और आगे हो गयी है।

कभी सोचा कि शादी करने में आनन्द है। पकी पकायी रोटी पत्नि के हाथ की मिलेगी और लगा बैठा शादी के पानी में छलाँग, परंतु फिर भी आनन्द नहीं मिला। आनन्द रूपी रोटी और आगे खिसक गयी।

फिर सोचा कि सन्तान से आनन्द मिलेगा, फिर लगा बैठा प्यार के पानी में छलाँग, पानी फिर हिला तथा आनन्द की रोटी और आगे हो गयी।

अतः इस प्रकार कहीं भी आनन्द हाथ नहीं लगता, न मान–सम्मान में, न शासन में, न मकान में, न धन दौलत में। अगर छलाँग लगानी है तो लगाते रहो, परंतु आनन्द की रोटी आपके हाथ न लगेगी। कुत्ते में अगर बुद्धि होती तो वह पानी में छलाँग लगाने से पूर्व ऊपर की तरफ देखता। पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करता तो उसे रोटी मिल जाती। आनन्द की वह रोटी नीचे नहीं ऊपर है। अतः आनन्द ही चाहिए तो ऊपर चढ़ो, नीचे न गिरो। यथा– अथर्ववेद (8/1/4)

''उत् क्रामातः पुरुष भाव पत्थाः'' .

अर्थात् मनुष्यो! ऊपर उठते रहो, आगे बढ़ते रहो। तुम नीचे मत गिरो। यही शाश्वत सत्य है। यही महर्षियों की हृदय–तन्त्रों का शाश्वत स्वर गूँज रहा है। ऊपर उठने को निर्वाण, आत्मसाक्षात्कार, मोक्ष, मुक्ति, भगवत्प्राप्ति या भगवद्दर्शन इत्यादि पुकार सकते हैं। हमारे मानव जीवन का लक्ष्य भी यही है तथा यही है मनुष्य जीवन की प्रगति की अन्तिम सीमा।

आत्मा और परमात्मा के एकीकरण को लेकर सामान्यतः साधक के मन में अनेकों प्रश्न उत्पन्न होते है। उनकी जिज्ञासा होती है, कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, किस लिए आया हूँ तथा मानव जीवन का परम लक्ष्य क्या है? उस लक्ष्य की पूर्णता पर कैसा होगा उसका जीवन? अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण के समक्ष ऐसी ही जिज्ञासा प्रकट की थी– (गीता 2/54)

केशव जे नर थिरमति लहहीं। तेहि कारन समाधि रत रहहीं।
केहि प्रकार तेहि भाषा होई। बैठत चलत कवन विधि सोई।।

अर्थात् हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिर बुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?

नचिकेता ने भी यमराज से ऐसे ही प्रश्न पूछे थे। उसने पूछा–

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये,
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं ,
वराणामेष वरस्तृतीयः।।

(कल्याण वर्ष, 74/3/548)

अर्थात् मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व रहता है या नहीं? नचिकेता के इस प्रश्न पुनर्मृत्य (जन्म–मरण) पर विजय प्राप्ति के साधन की जिज्ञासा के रूप में तैत्तिरीयब्राह्मण (3/11/8/5) में प्रस्तुत किया है।

पुनर्मृत्योर्मेऽपचिति ब्रूहि।

श्रीमद्भगवद्गीता (2/23) में कहा गया है कि आत्मा अजर, अमर है–

छिन्न सस्त्रसन हुइहै नाही, दहि नहिं सकिहै पावक माही।
भींजै नाहिं तोय सन सोई, मारूत सन सोषित नहिं होई।।

संत श्री तुलसीदास ने कहा है–

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

(रा.च.मा. 7/117/2)

अर्थात् जीवात्मा जो शरीर में रहती है, शरीर की सारी क्रियाओं का संचालन करती है, वह परम पिता परमात्मा का ही अंश है। जीवात्मा ही शरीर में चेतन आत्मा है। अतः यह अविनाशी तत्व (आत्मा) ही वह ब्रह्म है। आत्मा सत् है, इसी लिए जीना तथा जिलाना उसका स्वभाव है। यह चित्त है, अतः जानना और जनाना उसका स्वभाव है। यह आनन्दस्वरूप है, इसलिए आनन्दित रहना तथा आनन्द बाँटना उसका स्वभाव है। शरीर की मृत्यु का सच्चिदानन्द के इस व्यावहारिक स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं होता।

ब्रह्म, आत्मा अथवा परमात्मा शाश्वत, नित्य, शुद्ध–बुद्ध और मुक्त है।

वह ही इस जगत का एक मात्र आधार है–

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृत मुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिता सर्वे तदु नात्येति कश्चन।

(कठ. 2/2/8)

अर्थात् वही काम्य भोगों का निर्माण करने वाला परम पुरुष है, सबके सो जाने पर वह जागता है, वही विशुद्ध (शुभ्र ज्योतिरूप) तत्व है, वही ब्रह्म है, वही अविनाशी है। उसी में सभी लोक आश्रय पाते हैं, उसका अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता। उस विराट पुरुष को, जिसकी महिमा का गुणगान बर्फ से ढके पर्वत, नदियाँ तथा महासागर निरन्तर करते रहते हैं, जिसकी दिशायें भुजा हैं, उसे हम कभी न भूलें–

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

(ऋग्वेद 10/121/4)

उसका जो निरंतर स्मरण करता है, परमात्मा भी उसके कुशल क्षेम के वहन के लिए तैयार रहते हैं। गीता (9/22) में उनकी वाणी है–

चहुँ बेदन्ह जो साम बखाना, सुरन्हमाहि जो सुरपति माना।
प्रानिन्ह माहिं चेतना जोई, इन्द्रिन्ह मन मैं ही सब सोई।।

अर्थात् अनन्यभाव से समर्पित अपने भक्त की कुशलक्षेम वहन मैं स्वयं करता हूँ।

श्री तुलसीदास के राम का भी यही आश्वासन है–

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी।।

(रा.च.मा. 3/43/5)

अतः साधक पूर्ण समर्पण भाव से आत्मविभोर होकर प्रभु का हो जाता है, तब वह अपने को ईश्वर के पास ही पाता है–

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागत है मोर।।

अतः साधक की सारी इच्छायें, आशायें, सम्पत्ति तथा व्यक्तित्व, प्रभु के आधीन हो जाती है अर्थात् पूर्ण आत्मसमर्पण हो जाता है तब उसके सारे बन्धन खुल जाते हैं तथा एक अनोखे सुख की अनुभूति होने लगती है। जिसकी प्रतीति होती है, जिसमें प्रवृत्ति होती है, पर प्राप्त कुछ नहीं, ऐसा जगत है। जो नित्य प्राप्त है, परंतु जिसकी प्रतीति नहीं होती, वही परमात्मा है तथा उसकी ओर प्रवृत्त होना ही साधना है।

साधना गंगा की धारा के समान है। धारा के पानी को नापने तथा तोलने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है केवल श्रद्धा की। हमारी जैसी श्रद्धा होगी वैसा ही पानी मिल जायेगा। पानी की कोई सीमा नहीं है। सीमा तो हमारे पात्र की है। देखना मात्र इतना है कि हमारा पात्र कितना पानी ग्रहण कर सकता है। अतः जितना अधिक जल ग्रहण करेगा उतनी ही साधना प्रखर होगी तथा जितनी प्रखर साधना होगी, उतनी ही प्रगाढ़ होगी, हमारी ईश्वर–भक्ति। भक्ति का मूल मंत्र ही ईश्वर शरणागति है; यथा–

कानन, भूधर, बारि, बयारि, महाविषु, व्याधि, दवा – अरि घेरे।
संकट कोटि जहाँ तुलसी, सुत, मातु, पिता, हित, बंधु न नेरे।।
राखि हैं रामु कृपाल तहाँ, हनुमानु से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक, रसातल, भूतल में, रघुनायक, राकु सहायकु मेरे।।

(कवितावली 7/50)

आत्मसमर्पण के लिए शरणागति की अनिवार्यता है। पूर्ण आत्मसमर्पण के बाद ही साधक को परमात्मा के साथ एकाकार होने का आनन्द प्राप्त होता है। ऐसे ही साधक के लिए आश्वस्त करती है भगवान राम की यह वाणी

मम् पन शरनागत भयहारी'' (रा.च.मा. 5/43/8)

भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज, अर्जुन से स्पष्ट घोषणा करते हुए कहते हैं–

होउ पार्थ सब धर्मन्ह त्यागी, केवल मोर शरन अनुरागी।
करहुँ मुक्त सब पापन्ह तोही, चिन्ता सोक छांड़ि भजि मोही।।

(श्रीमद्भगवद्गीता, 18/66)

अर्थात् हे पार्थ! सभी धर्मों (सभी आश्रयों तथा सभी साधनों एवं विभिन्न मत–मतान्तरों तथा तर्क–वितर्कों) को छोड़कर केवल एक तू मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सभी पापों (बन्धनों एवं दोषों) से मुक्त कर दूंगा। तू शोक एवं चिन्ता न कर।

श्री राम की अनन्यभाव से उपासना करने पर 'राम तत्व' का ज्ञान होता है। अनन्यता को परिभाषित करते हुए श्री तुलसीदास जी ने लिखा है–

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।।

(रा.च.मा. 4/3)

राम तत्त्व का पुजारी अधिष्ठान की विस्मृति को दुःख मानता है। इसीलिए हनुमान जी कहते हैं– 'प्रभो! विपत्ति वही है, जब आपका स्मरण और भजन हो–

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तब सुमिरन भजन न होई।।

(रा.च.मा. 5/32/3)

अतः हमारी प्रार्थना निरंतर चलती रहनी चाहिए–

प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे।।

(रा.च.मा. 3/4/11)

अथवा

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम।।

(रा.च.मा. 3/4)

प्रार्थना अन्तः मन की गहराइयों से निकलनी चाहिए। कातर–स्वर से की गई प्रार्थना से अवश्य सफलता मिलती है। भगवान तो भाव के भूखे हैं। दर्द भरा स्वर सुनकर भगवान अत्यन्त दुःखी होकर भक्त की तरफ दौड़े चले आते हैं। मगरमच्छ ने जब गज का पैर अपने मुँह में भरकर गजराज को मारने की कोशिश की, तब असहाय गजराज ने स्वामी श्री हरि विष्णु जी से आर्तभाव से बन्धन मुक्त कराने की प्रार्थना की, तब श्री हरि तुरन्त ही आर्त प्रार्थना सुनकर हाथी की रक्षा के लिए भागे चले आये और उसे मगरमच्छ से बन्धन मुक्त करा दिया। इसी प्रकार द्रोपति ने 'चीर हरण' के समय आर्तभाव से केवल एक श्री योगेश्वर भगवान पूर्णकलावतार श्री कृष्ण से प्रार्थना की, तब द्रोपति की रक्षा साड़ी की लम्बाई बढ़ा कर की।

रामचरित मानस में (5/44/5) भगवान श्री राम ने स्वयं कहा है, मुझे निर्मल मन के भक्त अत्यन्त प्रिय हैं। कपटी, धोखे देने वाले, विश्वास घाती अच्छे नहीं लगते। यथा–

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

कबीर जी कहते हैं–

कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरें, कहत कबीर–कबीर।।

समता के वृक्ष पर आनन्द का फल लगता है, आगे और आगे और की बात में न फँसें, समता अपनायें, आनन्द मनायें, रोटी के लालच में अपने लक्ष्य से भटक कर मृत्यु को प्राप्त न हो। यही आनन्द योग है।

सद्गुरु भगवान के पावन चरण कमलों में मेरा साष्टांग प्रणाम् तथा सभी गुरु भाइयों को सादर जय गुरुदेव के साथ।

मृत्योर्बिभेषित किं मूढ भीतं मुंचति किं यमः।
अजातं नैव गृह्णाति कुरु यत्नमजन्मनि।।

अरे मूर्ख (मनुष्य) क्या तुम मृत्यु से डर रहे हो? डरे हुए को क्या मृत्यु छोड़ देती है? ऐसा समझ रहे हो तो यह तुम्हारी मूर्खता है। मृत्यु तो सबको काल का ग्रास बना देती है। वह तो जो जन्म ही नहीं लेता, उसी को नहीं पकड़ती है। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो, जिससे पुनः जन्म ही न लेना पड़े।

सुख व शांति

अंशुमानदेव मालवीय

आज इस भौतिक युग में प्रत्येक मनुष्य अपने निजी स्वार्थों के चलते अपने जरूरत से अधिक धन अर्जित कर रहा है और उस धन से भौतिक वस्तु को खरीद कर व उपयोग कर अपना विकास मान रहा है। परंतु अपने अज्ञानतावश यह भूल चुका है कि वह जो धन, सम्पत्ति व वस्तुओं का संग्रह कर रहा है जिसमें वह अपना पूरा जीवन लगा दे रहा है, वह इसी जीवन तक सीमित है। इस संसार जगत में जहाँ मनुष्य का एकमात्र सहारा भगवत् नाम है तो क्यों न हम इस दुनियादारी के चक्कर को छोड़ कर अपने समस्त कार्य को धर्म के सन्मार्ग पर चलकर भगवत् नाम का संग्रह करें, क्योंकि इनके नाम के संग्रह असीमित है।

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायण स्मृतिः।।

जगत की विपत्ति, विपत्ति नहीं जगत की सम्पत्ति, सम्पत्ति नहीं, भगवान का विस्मरण ही विपत्ति है और भगवान का स्मरण ही सम्पत्ति है।

इस सम्बन्ध में एक घटना का वर्णन करना यहाँ उचित होगा। एक गाँव में एक बहुत ही धनी व्यापारी रहता था। उसका मान, सम्मान व प्रतिष्ठा की चर्चा दूर–दूर तक थी। वह जिधर से गुजरता था उसके सम्मान में लोग उठ खड़े होते थे। उसके पास धन, दौलत एवं ऐश्वर्य के सभी साधन मौजूद थे। इन सब चीजों के बावजूद भी उसके पास कमी थी तो यह कि सुख व शांति उसके पास नहीं थी।

उसी गाँव में दूसरी तरफ उसी धनवान व्यापारी के हवेली के सामने एक अति निर्धन किसान रहता था। जिसके पास रहने के लिये एक टूटी–फूटी झोपड़ी थी, पहनने के लिए एक फटा पुराना कपड़ा था और किसी तरह से उस निर्धन का गुजारा चल रहा था, लेकिन इतनी गरीबी में रहने के बावजूद वह बड़े ही सुख व शांति से रहता था।

धनवान व्यापारी इस निर्धन किसान को अक्सर देखता था और यह सोच कर परेशान रहता था और सोच में डूब जाता था कि आखिर इस निर्धन के पास कुछ भी न रहते हुये भी इतना सुखी क्यों है।

एक दिन उस धनवान ने यह निर्णय किया कि वह उस निर्धन किसान के घर जाये और अपने मन में उठे प्रश्न का जवाब उससे पूछे और तब उसके घर धनवान जा पहुँचा और उसने पूछा उस किसान से, "अरे भाई आप मुझे यह बतायें कि मेरे पास धन, दौलत व ऐश्वर्य के सभी साधन मौजूद होने के बावजूद मुझे सुख व शांति नहीं है और तुम एक मामूली किसान व निर्धन होने के बावजूद भी ऐसे रहते हो जैसे कि बहुत ही सुखी व समृद्ध हो आखिर ऐसा क्यों?"

तब किसान बोला, "सेठ जी मैं एक गरीब किसान जरूर हूँ, मेरे पास धन व दौलत न हो, परंतु मेरे पास भगवत् नाम का संग्रह व संतोष है जो कि मुझे अन्दर से यह प्रेरित करता है कि मैं ईमानदारी, सच्चाई व मेहनत से अपनी अजीविका चलाऊँ और किसी को पीड़ा न पहुँचाऊँ।"

सेठ जी जो सम्पत्ति दूसरों को पीड़ा देकर संग्रह की जाती है, वास्तव में वह कभी सुख का कारण नहीं बन सकता है। इसका दुष्परिणाम मनुष्य को भोगना ही पड़ता है और ऐसे धन से मनुष्य सिर्फ धनवान ही बन सकता है। परंतु अपने मूल वक्तव्य अपने मुख्य उद्देश्य को नहीं पा सकता है क्योंकि धन को धर्म के सन्मार्ग पर चलकर ही प्राप्त करना मनुष्य के लिये उचित एक मात्र सरल उपाय है और इन बातों को ध्यान में रखते हुये धन को अर्जित करना चाहिये तथा धनवान को धन का सदुपयोग परोपकार की भावना से खर्च करना चाहिये। उदाहरण – जैसे कि सड़क किनारे रिक्त स्थानों पर वृक्षारोपण करवाना, प्याऊ लगवाना, अन्न क्षेत्र चलवाना, गरीब छात्रों के लिये पाठशाला का निर्माण करवाना इत्यादि कार्यों को करना धनवान का मुख्य कार्य है क्योंकि धन हमें अपने इसी समाज से मिला है और इस समाज के लिये धर्म का कार्य करना भी हमारा परम कर्तव्य है।

धनवान व्यापारी उस निर्धन किसान की बात सुनकर गदगद हो गया और उसकी आँखों से आंसू गिरने लगते हैं। अब उसे अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य समझ में आ जाता है। और वह उस निर्धन किसान के गले लग जाता है।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा यह सविनय निवेदन है कि लेख की त्रुटि को ध्यान न देकर इसके पवित्र भावों को ग्रहण करें तथा सद्गुरु देव भगवान को ही एकमात्र सहायक मानकर आरती–पूजन एवं कृपा चरित्र का वर्णन सदैव करें।

हमें जो कुछ चाहिए वह श्रद्धा ही है। दुर्भाग्यवश भारत से इसका प्रायः लोप हो गया है, और हमारी वर्तमान दुर्दशा का कारण भी यही है। यह श्रद्धा ही है, जो एक मनुष्य को बड़ा और दूसरे को दुर्बल और छोटा बना देती है।

–स्वामी विवेकानन्द

हमारा लक्ष्य

योग के जिस मार्ग का यहाँ अवलम्बन किया जाता है उसका हेतु अन्य योगमार्गों से भिन्न है। इस योगमार्ग का लक्ष्य केवल सामान्य सांसारिक देहात्मभाव से ऊपर उठकर परमात्म भाव को प्राप्त होना ही नहीं है, प्रत्युत उस परमात्म भाव के विज्ञान को इस मन, बुद्धि, प्राण और जीवन के तमस् में ले आना, इसको रूपान्तरित कर देना, इनमें भगवान् को प्रकट करना और जड़ पार्थिव प्रकृति में दिव्य जीवन निर्माण करना इसका लक्ष्य है। यह बड़ा ही दुर्गम लक्ष्य और कठिन योग साधन है; बहुतेरों को, या प्रायशः सभी लोगों को यह असम्भव ही प्रतीत होगा। सामान्य, अनभिज्ञ सांसारिक देहात्मभव में अज्ञान की जो क्रिया शक्तियाँ जमकर डटी हुई हैं वे इसके विरुद्ध हैं और इसका होना ही नहीं मानतीं और इसके होने में बाधा ही डालने का यत्न करती हैं और साधक स्वयं भी देखेगा कि अपने ही मन, प्राण और शरीर इसकी प्राप्ति में कितनी जबर्दस्त रुकावटें डालेंगे। यदि तुम इस लक्ष्य को सर्वात्मना स्वीकार कर सको,

इसके लिए सब कठिनाइयों का सामना करने को तैयार हो, पीछे जो कुछ हुआ उसे और उसके बन्धनों को पीछे ही छोड़ दो और इस भगवद्भाव की सम्भावना के लिए सब कुछ छोड़ देने और चाहे जो हो जाय, इसके पीछे लगाने को प्रस्तुत हो, तो ही तुम यह आशा कर सकते हो कि इसके पीछे जो महत् सत्य है उसका तुम्हें साक्षात्कार होगा। इस योग की साधना का कोई बंधा हुआ मानसिक अभ्यास क्रम या ध्यान का कोई निश्चित प्रकार, कोई मन्त्र या तन्त्र नहीं है; यह साधना आरम्भ होती है साधक की आरोहणेच्छा से; उसके अपने ऊपर या अन्दर आत्मध्यान से; अपने आपको भगवत्प्रभाव की ओर उस भगवच्छक्ति की ओर जो हमारे ऊपर है तथा उसके कार्य की ओर और उस भगवत्सत्ता की ओर जो हमारे हृदय में है-अपने आप को खोल देने से; और इन सब बातों के विरुद्ध जो-जो कुछ है उसका त्याग करने से। श्रद्धाविश्वास, आरोहणेच्छा तथा आत्मसमर्पण के द्वारा ही इस प्रकार अपने आप को भगवत्सत्ता की ओर खोल देना होता है।

-महर्षि अरविन्द

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

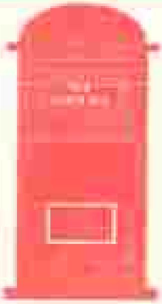

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर प्रेस आवरण (स्याम्प आवरण) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर स्टैण्ड बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु. 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

October 2009

प्रेषक संस्थान:

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

सरॉई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सरॉई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14568.

सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा